।। ॐ स्वस्ति श्री गणाधिपतये नमः ।।

।। विवाह-संस्कार-विधिः ।।

●

'काश्मीरी कृत्य'

'भाषा-टीका-सहित'

●

टीकाकार :

दुर्गालाल शर्मा राजपुरोहित "भट्ट"

बी० ए० (हिन्दी-संस्कृत) बी० एड०

किश्तवाड़ (जम्मू-कश्मीर राज्य) १८२२०४

॥ ॐ स्वस्ति श्री गणाधिपतये नमः ॥

॥ विवाह-संस्कार-विधिः ॥

"काश्मीरी कृत्य"
"भाषा-टीका-सहित"

विशेष
धर्मशास्त्र तथा मुहूर्त्तादि प्रकरण
समन्वित
एवं
सभी प्रकरण अपने में सर्वविध
परिपूर्ण

टीकाकार :
दुर्गालाल शर्मा राजपुरोहित "मट्टू"
बी० ए० (हिन्दी-संस्कृत) बी० एड०
किश्तवाड़ (जम्मू-काश्मीर राज्य) १८२२०४.

॥ ओ३म् श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमती प्रेम देवी ग्रंथमाला पुष्प-३

प्रातः स्मरणीय दिवंगत

श्री पण्डित हरिलाल शर्मा 'व्यास'

ज्योतिषाचार्य की पावन स्मृति
में सादर समर्पित।
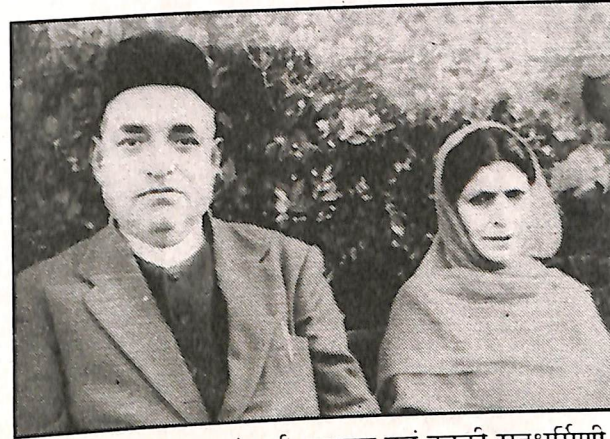
श्रीमान् लाला अमरचंद जी महाजन एवं उनकी सहधर्मिणी
श्रीमती प्रेम देवी जी, जिनकी पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र
श्री चन्द्र प्रकाश जी, गंगा भंडार किश्तवाड़ ने
इस पुस्तक की छपाई हेतु वित्तीय
सहयोग प्रदान किया।
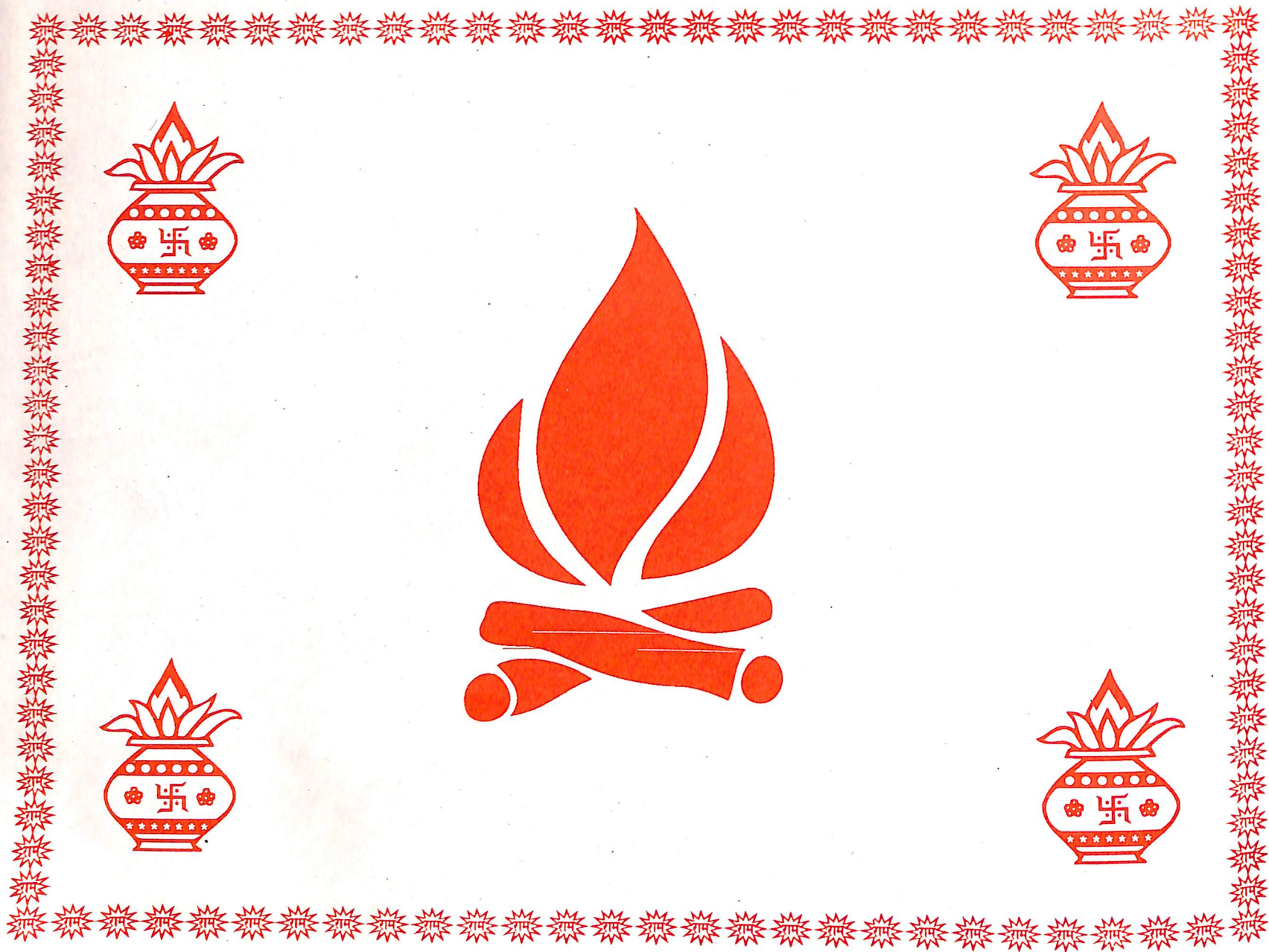
प्रकाशकीय

हिन्दू संस्कार—

हिन्दू जीवन-पद्धति एवं हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता, विलक्षणता तथा सनातनता का आधार संस्कार हैं। संस्कार ही संस्कृति हैं। संस्कार ही मनुष्य को पशुता से उठाकर मानवता और जीवन की पूर्णता की ओर ले जाते हैं। जैसे खान से सोना, हीरा आदि निकालने पर उसका मल, अनावश्यक पदार्थ इत्यादि हटाने पड़ते हैं और फिर उसे तपाकर सुन्दर, चमकदार बनाकर एक उपयोगी, मूल्यावान वस्तु में परिवर्तित कर दिया जाता है, उसी प्रकार से मनुष्य को भी विधिपूर्वक संस्कारों से युक्त कर उसमें मानवीय गुणों और शक्तियों का आधान किया जाता है।

संस्कारों से मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा आदि शुद्ध होते हैं। संस्कार मनुष्य को अज्ञान और पाप से दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न करते हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना— ये जीवन के तीन प्रमुख साध्य मनुष्य द्वारा संस्कार-युक्त होने के पश्चात् ही सफलतापूर्वक साधे जा सकते हैं। संस्कारों से ही किसी मनुष्य के अन्दर सद्-व्यवहार, शालीनता, शिष्टता, धर्मनिष्ठा एवं शुद्ध आचरण आदि गुणों का आधान होता हैं।

श्रुति-स्मृति में प्रतिपादित व्यवस्था के अनुसार हमारे यहां संस्कारों का क्रम जन्म के पूर्व से ही आरम्भ हो जाता है। इन संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न बताई गई है। गौतम स्मृति में ४८ संस्कार बतलाये गये हैं। महर्षि अंगिरा ने २५ संस्कार निर्दिष्ट किये हैं। पुराणों में भी विविध संस्कार बतलाये गये हैं। इन सबमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यास ने इन्हें व्यास स्मृति में प्रतिपादित किया है।

विवाह-संस्कार—

षोड्श संस्कारों में प्रमुख और महत्वपूर्ण विवाह संस्कार है। यह एक धार्मिक संस्कार है जिसे पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सफल-साधना हेतु मार्ग प्रशस्त हो जाता है। विवाह स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को सामाजिक मान्यता तो प्रदान करता ही है, साथ ही गृहस्थाश्रम को व्यष्टि,.समष्टि और पारलौकिक हित-साधन के लिये उपादेय और सार्थक बना देता है।

हिन्दू पद्धति में विवाह संसारी समझौता या लौकिक इकरार नामा नहीं अपितु वैदिक संस्कार है। यह एक पवित्र संस्कार है जो देवी-देवताओं और ईश्वर को साक्षी मानकर सम्पन्न किया जाता है। विवाह द्वारा स्थापित एवं सम्पुष्ट दो आत्माओं का सम्बंध अति पवित्र, सर्वस्वीकृत और प्रामाणिक होता है।

हिन्दू-विवाह-पद्धति शास्त्र-सम्मत और वैज्ञानिक है। विवाह जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर होता है जो सबके लिये असीम खुशियाँ लेकर आता है। विवाह में दो परिवारों का मिलन, सम्बंधियों और इष्ट-मित्रों का एकत्रीकरण, लोक-गीतों का गान, यज्ञ-होम तथा अन्य सांस्कृतिक क्रियाकलाप विवाह को एक मांगलिक, दिव्य-कार्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हिन्दू-विवाह की रीति, मंगलमयता, व्यापकता और ओजस्विता के आगे अन्य कोई भी विवाह पद्धति समीचीन नहीं बैठती।

हमारी श्रद्धाहीनता और उदासीनता —

बड़े ही खेद का विषय है कि हम अपने ही संस्कारों के प्रति श्रद्धाहीन और उदासीन हो गये है । हमारे तत्त्व-वेत्ता, दिव्य, त्रिकालदर्शी महर्षियों और ब्रह्मर्षियों ने अपनी सम्पूर्ण-साधना का सत्व संकर्शित कर हमारे लिये संस्कारों का प्रतिपादन किया था ताकि हम अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन के व्यवहार को अनुशासन-बद्ध कर सोद्देष्य इसका यापन करें । हमारी सोच, व्यवहार और समस्त क्रियाकलाप इन संस्कारों से ही सुसंस्कृत हुए और हमारी संस्कृति का निर्माण हुआ । परन्तु इन संस्कारों की और इनसे निर्दिष्ट जीवन-पद्धति की आज हम जिस ढंग से अवहेलना और अवमानना कर रहे हैं उससे हिन्दू समाज अन्दर ही अन्दर खोखला और कमजोर हो गया है । आज स्थिति यह है कि एक हिन्दू को अपने संस्कारों के प्रति साधारण ज्ञान भी नहीं; हमने अपने संस्कारों को विस्मृत कर दिया है । जिन थोड़े से संस्कारों को अभी हम जानते हैं उनका भी हम भोंडा प्रदर्शन करते हैं और उनका मज़ाक ही उड़ाते हैं । श्रद्धा और विश्वास न होने के कारण वे एक औपचारिकता मात्र ही रह गए हैं । इससे हिन्दू-जीवन पद्धति विखण्डित हो रही है और हमारे समाज की जड़ें हिलने लगी हैं ।

समय, स्थान और परिस्थिति अनुसार परिवर्तनशील होना आवश्यक है, परन्तु वर्तमान में हम इस प्रकार से परिवर्तित हो रहे हैं कि अपने अस्तित्व को ही खो बैठे हैं । यदि हमें घर में बच्चे का जन्म दिन मनाना हो तो केक काटने और मोमबतियाँ बुझाने जैसी अवैज्ञानिक और प्राणहीन पाश्चात्य प्रथाओं का अनुसरण करते हैं— हमें जन्म दिन भी अपनी पद्धति से मनाना नहीं आता ।

ढहती विवाह-संस्था —

विवाह, जो कि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है, शास्त्र और परम्पराओं द्वारा संवर्धित और विकसित होकर एक परिपूर्ण संस्था के रूप में हमारे सामने विद्यमान है । परन्तु संस्कारों के प्रति हमारी उपेक्षा और तिरस्कार की भावना ने इस संस्था को भारी क्षति पहुंचाई है और इसे कमज़ोर कर दिया है । ढह रही विवाह-संस्था से हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन की आधार-शिला खिसक रही है । विवाह-विधि एक औपचारिकता मात्र रह गई है जिसे हम मन-माने ढंग से सम्पन्न करवाते हैं । एक उच्च, श्रेष्ठ, धार्मिक-संस्कार के रूप में हम विवाह-विधि को महत्व नहीं देते, अपितु अब दहेज, पैसे के लेन-देन, बारात के आडम्बरपूर्ण स्वागत-समारोह, खरचीली डेकोरेशन और शराब को कंही अधिक महत्व देते हैं ।

विवाह-विधि एक धार्मिक कृत्य है जिसे शास्त्रीय विधि-विधान से सम्पन्न कराना आवश्यक है । इसके लिए वातावरण का शुद्ध, शांत और गंभीर होना भी आवश्यक है । परन्तु यदि विधि-विधान की उपेक्षा की जाए, कृत्य खण्डित हों और अश्रद्धा से सम्पन्न किये गये हों तो विवाह शास्त्र-सम्मत कैसे रह सकेगा ? अनावश्यक उच्छल-कूद और हुल्लड़-बाजी से वातावरण की गम्भीरता भ्रष्ट हो जाती है, शराब से यज्ञ-होम और सारा परिवेष अपवित्र हो जाता है । अब लग्न और मुहूर्त्त की कोई कीमत नहीं होती । मुहूर्त्त निकला जा रहा है और हम अनावश्यक, अशोभनीय बातों में मद-मस्त होते हैं । लड़ाई-झगड़े, सिर-फुटौल आदि भी विवाहों में आम बात होती जा रही है । बारातियों की उच्छृंखलता और प्रदर्शनातिरेक से कन्या-पक्ष को अपमानित करना— ऐसा भी विवाह के दौरान देखने को मिलता है । विवाह सम्पन्न कराने के कृत्य और उसके कर्त्ता ब्राह्मण का अनादार होता है, उसका नाना-विध मज़ाक उड़ाया जाता है और मनमाने ढंग से विवाह पूरा कराने के लिए उसे मजबूर किया जाता है । कई यजमान

यज्ञ-कर्त्ता को उचित दक्षिणा देने में भी आना-कानी करते हैं। विवाह संस्कार से जुड़ा सामाजिक-अनुशासन, धार्मिकता और श्रद्धा अब धीरे-धीरे विलुप्त हो रहे हैं। लग्न, द्वारपूजा, सम्प्रदान, सप्तपदी आदि विवाह-कृत्य अब झंझट लग रहे हैं— इन्हें अब महत्व नहीं दिया जाता। खान-पान, अनावश्यक ताम-झाम, प्रदर्शन और शराब— ये अधिक महत्वपूर्ण चीज़ें हो गई हैं। आधुनिकता की अन्धी दौड़ और श्रद्धाहीनता हमारी संस्कार-व्यवस्था को चिन्ता-जनक हद तक प्रभावित कर रही है।

सचेत और सचेष्ट हों —

हिन्दू-संस्कारों को जीवित रखना तथा इनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना— यह समय की मांग है। इसके लिये प्रबुद्ध लोगों को; समाज, संस्कृति और धर्म से प्रेम और श्रद्धा रखने वालों को आगे आकर इस दिशा में प्रयत्न करने चाहिए। विवाह संस्कार सम्पन्न कराने के लिए पुरोहितों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। विवाह पद्धति से सम्बन्धित सरल तथा सुबोध-विधि-युक्त पुस्तकों की रचना होनी चाहिए। विवाह-विधि में पाये जाने वाले काल बाह्य और अनावश्यक रीति-रिवाजों को विचारपूर्वक हटा लिया जाना चाहिए। ब्याह-शादियों से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों को दूर करने के लिये सभी को यथाशक्ति चेष्टा करनी चाहिए। समय रहते सचेत होना आवश्यक है।

एक लघु प्रयास —

हिन्दू शिक्षा समिति, किश्तवाड़ (पंजीकृत) ने उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, एक छोटे से प्रयास के रूप में प्रस्तुत-पुस्तक 'विवाह-विधि' का प्रकाशन हाथ में लिया। यह पुस्तक धर्मशास्त्रों में यत्र-तत्र वर्णित विवाह-विधि का संकलन-मात्र है— स्रोत तो मूलतः धर्मशास्त्र और अभी तक प्रचलित धार्मिक-सामाजिक परम्पराएं ही हैं। हां, इस पुस्तक में यह विशेषता अवश्य है कि सरल हिन्दी भाषा में टीका साथ-साथ ही प्रस्तुत की गई है, जो प्रायः इस विषय से सम्बन्धित अन्य पुस्तकों में उपलब्ध नहीं। विवाह-सम्बन्धी कृत्यों को जिस तारतम्य के साथ प्रस्तुत किया गया है, वह भी इस ग्रंथ की एक विशेषता ही मानी जाएगी। विवाह-विधि सीखने वाले या विवाह सम्पन्न करवाने वाले पुरोहित के लिए कई अर्थों में पूरी-प्रक्रिया का सरलीकरण हुआ है। विद्वान लेखक श्री दुर्गालाल शर्मा 'मट्टू' इन सब प्रयासों के लिए बधाई के पात्र हैं। आशा की जाती है कि यह पुस्तक कर्मकाण्डी-ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा विद्वानों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी और विवाह-संस्कार को (विशेष कर इस क्षेत्र में) सुव्यवस्थित, सुस्थिर और सुचारु रूप से पुनरुज्जीवित करने और प्रवाहमय बनाने में सफलता मिल सकेगी।

कृतज्ञता—

हम सियाराम प्रिन्टर्स, पहाड़गंज दिल्ली के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, जिनके सुरुचिपूर्ण परिश्रम, श्रद्धा एवं धर्म प्रेम के बल पर हम संस्कृत-भाषा के इस लघु-ग्रंथ का प्रकाशन फलीभूत कर पाये।

व्यास पूर्णिमा, ३०.७.९६

प्रकाशन विभाग,
हिन्दू शिक्षा समिति
किश्तवाड़-१८२२०४

॥ अत्रादौ श्री इष्टदेवार्चनम् ॥

"ॐ महादेव! महादेव!! महादेव!!! ॐ"

शंकरं करुणाकरं जगकारणं भवतारणम्।
श्रीधरं वृषभेश्वरं वृषवाहनं जनपावनम्॥
पालकं दुरितापहं परमेष्ठिनं जगदीश्वरम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम्॥१॥

श्रीपतिं कमलापतिं त्रिपुरान्तकं वरदायकम्।
प्रीतिदं भवभीतिदं जनतारकं रिपुमारकम्॥
इष्टदं शुभदृष्टिदं प्रणपालकं भुवनेश्वरम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम्॥२॥

ईश्वरं बलबुद्धिदं गुणवृद्धिदं मोहमारकम्।
मोक्षदं जनतोषदं परमात्मनमऽघनाशकम्॥
चिद्घनं सुरपूजितं कमलाकृतिममरेश्वरम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम्॥३॥

सिद्धिदं जनवृद्धिदं शितिकण्ठिनं रुण्डमालिनम्।
शाश्वतं प्रमथाधिपं गिरिजाप्रियं शिवशंकरम्॥
कामदं बहुमानदं जनत्राणदमऽखिलेश्वरम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेख्वरं परमेश्वरम्॥४॥

त्र्यम्बकं त्रिगुणात्मकं जगवन्दितं जनपूजितम्।
मानदं बहुमानिनं गजगामिनं पुरुषोत्तमम्॥
अच्युतमऽहिमालिनं सगुणात्मकमऽचलेश्वरम।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम्॥५॥

ज्ञानदं गुणमानदं गुणमन्दिरं गुणग्राहिनम्।
सुन्दरमऽभिरामदं सुखसागरं नटनागरम्॥
भोगदं मनमोददं नरकान्तकमऽम्बिकेश्वरम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेख्वरं परमेश्वरम् ॥६ ॥
तारिणं गङ्गधारिणं हितकारिणंमदहारिणम्।
लक्षदं जनरक्षदं मुनित्राणदं धृतिमानदम्॥
ओजदं सुखभोगदं धनपुत्रदं नन्दिकेश्वरम्।
त्वां भजेगिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम् ॥७ ॥
त्राणदं धनमानदं श्रुतिज्ञानदं तिमिरापहम्।
बोधदं मुनिमोददं जनत्राणदं रिपुत्रासदम्॥
तेजदं सुखशक्तिदं भुवनाधिपं वसुधाधिपम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम् ॥८ ॥
भुक्तिदं जनमुक्तिदं ब्रह्मज्ञानदं श्रुतिपालकम्।
सन्नुतं धनमित्रदं गुणरूपदं मणिमालिनम्॥
श्रीकरं विषधारिणं शशिसौख्यदं मलनाशकम्।
त्वां भजे गिरिजापतिं शशिशेखरं परमेश्वरम् ॥९ ॥
मङ्गलं स्तवराजमेतदऽष्टोत्तरशतनामकम्।
यः पठेच्छिवसन्निधौ सुसमाहितः अहरागमे ॥
लभेत् स धनपौरुषं चिरजीवनं सुखसाधनम्।
सद्गतिमचलंध्रुवं शिवपादपङ्कजसेवने ॥१० ॥

॥ लेखक कृत ॥

॥ सर्वविघ्न प्रशमनार्थं गणेश-गुर्वादिध्यानमावाहनंच ॥

कालातीतं कलातीतं गुणातीतं गजाननम्।
आदिदेवं महादेवं देवदेवं वराननम्॥

एकदन्तं दयावन्तं गौरीपुत्रं सुरेश्वरम्।
वन्देऽहं शैलजासूनुमादिदेवं गणेश्वरम् ॥१ ॥

वीणा वरधरां शुभ्रां श्वेत पद्मासनस्थिताम्।
अक्षमालायुतां दिव्यां नित्यंवन्दे सरस्वतीम् ॥२ ॥

सकल विघ्नहर्तारं दातारं सुखसम्पदाम्।
ज्ञान विज्ञान भण्डारं गुरुदेवं नमाम्यहम् ॥३ ॥

हस्तेऽक्षमाला हृदिकृष्ण तत्त्वं
जिह्वाग्रभागे वर राममन्त्रम्।
यन्मस्तके केशवपाद तीर्थं
शिवं महाभागवतं नमामि ॥४ ॥

परंपावनं ज्ञानविज्ञानरूपं
अजं निर्विकल्पं सदानन्दरूपम्।
त्रिकालज्ञमीशं लसत्भालचन्द्रं
भजे कृष्ण चन्द्रं सुराणामधीशम् ॥५ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवर श्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥६ ॥

सर्व मंगल माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥७ ॥

"विषयानुक्रमणिका"

लेखक श्री दुर्गालाल शर्मा भट्ट

॥ प्रस्तावना ॥

महाविद्ये ! नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं च भारति।
महावाणि ! नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं सरस्वति ॥१ ॥
आशुतोषे त्रिनेत्रे च, भारति वाक् सरस्वति।
शुक्लाम्बर धरे देवि ! त्राहि मां शरणागतम् ॥
पाहि मां शरणागतम् ॥२ ॥ (लेखक कृत)

ओ३म् विशुद्ध-ज्ञान देहाय त्रिवेदी-दिव्य-चक्षुषे।
श्रेयः प्राप्ति निमित्ताय नमः सोमार्द्ध धारिणे ॥ (दुर्गा सप्तशती)

जिन आदिदेव महादेव का विशुद्ध ज्ञान ही शरीर है, तीनों वेद ही जिनके तीन नेत्र हैं, जो समस्त कल्याण के कारणभूत हैं तथा जो मस्तक पर अर्द्ध चन्द्रमा धारण किये हुए हैं, उन चन्द्र शेखर भगवान् शंकर को हमारा नमस्कार है।

गुर्वाशीर्वाद, इष्टदेवानुकम्पा, माँ भारती की कृपा, द्रुतलेखकलानिपुण विघ्नघ्न गणेशस्तवन एवं चिन्तन, सनातन धर्म प्रेमियों की सत्प्रेरणा तथा हठयोगावलम्बन के फलस्वरूप हमें प्रस्तुत पुस्तक को लोकहितार्थ प्रकाशित करने पर परम हर्षानुभूति हो रही है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ गी० ३/३५

अर्थात् भली प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम एवं कल्याणकारी है, अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

धर्म पालन एवं धर्मावलम्बन तथा धर्मानुसरण एवं धर्माचरण से मनुष्य मात्र का इहलोक और परलोक मंगलमय हो जाता है। धर्म की सदैव जय होती है— यह शाश्वत सत्य है। किन्तु कथनी और करनी में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। 'हिन्दू धर्म की जय हो' का जय घोष भले ही घन गर्जन की तरह करें किन्तु यदि हमारा आचरण तदनुरूप न हो तो खाली जयघोष से कोई लाभ नहीं वरन् हानि निश्चित है। हमारे उक्त कथन के प्रत्यक्ष प्रमाण पाठक महानुभावों को यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने को मिलेंगे।

धर्म क्या है ? 'धारयसीति धर्मः' धर्म का अर्थ है— धारण करना। अतः ऐसी भावनायें मत धारण कीजिए जिन से दूसरों को कष्ट हो। धर्म से ही राष्ट्र, विश्व, व्यक्ति का संघटन, उत्थान, धारण और पोषण होता है। धर्म समाज के अस्तित्व की रक्षा करने वाला, मानव की दुष्प्रवृत्तियों का संस्कार करके उसे सत्पथ पर प्रेरित करने वाला, पारस्परिक सौहार्द उत्पन्न करने वाला, मतभेदों को मिटाने वाला प्रमुख साधन है। यही धर्म समाज की स्थिति की रक्षा करता है, उसे दृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान करता है।

'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः

धर्म व्यक्ति की लौकिक उन्नति और आध्यात्मिक उत्थान का सोपान है। अविरोध अर्थात् मैत्री भाव वा निर्वैरता ही धर्म का यथार्थ स्वरूप है।

धर्म तथा ईश्वर पर आस्था त्रिविध ताप से मुक्ति दिलाने का एकमात्र साधन है। धर्माचरण दिव्य बल प्रदान करता है जो सार्थक है। अतः धर्म प्रेमी महानुभावों से हमारा सादर निवेदन है कि धर्मशास्त्र सम्मत उपदेशों एवं आदेशों पर चलकर धर्म का दृढ़ता से पालन करें।

मृत्युलोक में जन्म लेकर मनुष्य का चतुर्विध पुरुषार्थ— 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' प्राप्त करना ही एक मात्र ध्येय है। इनको प्राप्त करने के उपरान्त कुछ शेष नहीं रहता। धर्म साधन से अन्य तीन पुरुषार्थ स्वयमेव मानव को प्राप्त हो जाते हैं।

हिन्दू संस्कृति में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कार से मनुष्य की अन्तरात्मा शुद्ध होती है और उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यक् ज्ञान उपलब्ध होता है। इहलौकिक एवं परलौकिक सुख की उपलब्धि में संस्कारों से संस्कृत किया हुआ शरीर ही सहायक रूप होकर मानव को अपने उत्कृष्ट लक्ष्य तक पहुँचाने का साधन सिद्ध होता है। साथ ही सुख शान्ति एवं सुख-समृद्धि का मूल स्रोत-देवोपासना, गुरु कृपा तथा भगवदनुग्रह है।

उक्त संदर्भ का हमारी कृति से शतप्रतिशत सम्बन्ध है कारण कि 'विवाह संस्कार पद्धतिः' में समस्त देवी-देवताओं का 'आह्वान, स्वस्त्ययन, भद्रपाठ, ग्रहादि स्थापन' वैदिक रीति से ओत-प्रोत है । यथा विधि मङ्गलकार्य सम्पादन करने पर यजमान का आशातीत सर्व विध कल्याण होता है ।

किन्तु खेद है— प्रायः देखने में आता है कि इस धार्मिक कृत्य के मङ्गलमय प्रभावों की अवहेलना करके यजमान दिखावे की ओर अधिक ध्यान और अधिक अपव्यय करने से चूकते नहीं तथा दूसरी ओर धार्मिक कृत्य में अश्रद्धा एवं कृपणता का प्रदर्शन कर अपने मौलिक तथा हितकारी कर्त्तव्य से विमुख होते जा रहे हैं । फलतः दैविक, दैहिक एवं भौतिक तापों से निरन्तर तपते और झुलसते रहते हैं ।

'कृतार्थयन्ति रक्षन्ति स्वभक्तान् सर्वदेवताः' ॥

हम उपदेशों की अपेक्षा आचरण को अधिक महत्त्व देते हैं । अतः सब सनातन धर्मावलम्बी बन्धुओं से हमारा सादर एवं विनम्र निवेदन है कि भविष्य में जब भी सौभाग्य से उन्हें कोई भी माङ्गलिक कार्य करने वा करवाने का सुअवसर प्राप्त हो तो धार्मिक कृत्य श्रद्धा एवं उदारता से सम्पादन करने में उत्साह दिखायें । ऐसा करने से आप का यथेष्ट लाभ एवं कल्याण होगा । इसके साथ ही एक अनमोल बात :—

दानं व्रतानि नियमाः ज्ञानं ध्यानं हुतं तपः ।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥

अर्थात् क्रोध सब उपद्रवों एवं अनर्थों का मूल है; कारण कि दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, यज्ञ और तप भले ही परिश्रम से किये जायें किन्तु क्रुद्ध होने पर उपर्युक्त कर्म निष्फल हो जाते हैं । अतः क्रोध का सर्वथा त्याग मङ्गलमय है । और भी :

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तपतं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न तत्प्रेत्य नो इह ॥ श्रीमद्भगवद्गीतातः ॥

अर्थात् बिना श्रद्धा के होम हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है वह समस्त असत्— ऐसा कहा जाता है । अतः ऐसा कर्म न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरणोपरान्त फल प्रद है ।

शारदा क्षेत्र काश्मीर में वहां की हिन्दू जनता जिस संस्कार विधि से गर्भाधानादि वैदिक संस्कार करवाती है उसी पद्धति का अनुसरण द्विगर्त प्रान्तीय ज़िला डोडा की हिन्दू जनता भी चिरकाल से करती चली आयी है। यह पद्धति 'लौगाक्षिगृह्यसूत्र' के आधार पर निर्मित हुई है जो विशेष सुगम, शिक्षाप्रद एवं सर्वथा वेदविहित है। यद्यपि सभी हिन्दू जनता उक्त पद्धति को अपने धार्मिक संस्कारों के सम्पादन में प्रयोग में लाती है तथापि मूल पद्धति देव भाषा संस्कृत में होने के कारण अधिकांश लोगों को इसके महत्त्व को समझने में बड़ी कठिनता का अनुभव हो रहा है। वर्तमान काल में जनता अधिकाधिक तर्क प्रधान हो गई है, वह आज यह चाहती है कि उसे प्रत्येक वस्तु के महत्त्व से अवगत कराया जाए। केवल मन्त्रों के उच्चारण ही आज उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकते। वैदिक संस्कारों पर समुचित साहित्य-लोक भाषा में निर्माण करने की प्रबल आवश्यकता है, अन्यथा जो आज संस्कारों की ओर उपेक्षा बरती जा रही है वह हिन्दू संस्कृति के लिए हानिकारक सिद्ध होगी।

काश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० केशव भट्ट ने संस्कार विधि प्रकाशित कराई है किन्तु उस पर कोई टीका विद्यमान् न होने से वह सर्व साधारण के लाभ की वस्तु नहीं है। उपर्युक्त त्रुटि एवं भयावह दुष्परिणाम को दृष्टि में रखकर हमने मूलरूप में प्रकाशित हुई इस पुस्तक की सरल हिन्दी भाषा में टीका प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस सम्बन्ध की प्रथम पुस्तक है। यदि इसके अध्ययन, पठन, पाठन एवं क्रिया से धर्म प्रेमियों को न्यूनाधिक लाभ होता है तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे और भविष्य में भी धर्म प्रेमी जनताजनार्दन के लाभार्थ शेष संस्कारों पर क्रमशः सटीक पुस्तकें प्रकाशित करवाने का प्रयत्न करेंगे।

आभार

इस पुस्तक को पूर्णतः प्रदान करने में हमें सर्व प्रथम परम पूजनीय, प्रातः स्मरणीय पं० हरिलाल शर्मा 'व्यास' की 'विवाह संस्कार' पर लिखित कुछ प्रारम्भिक पत्रों का आधार मिला जो हमें अपने सम्बन्धी पं० मोहन लाल 'व्यास' द्वारा प्राप्त हुए। दच्छन मण्डलस्थ— भट्टपोरा ग्रामवासी वयोवृद्ध कर्मकाण्डी पं० सोहनलाल धर का सानिध्य एवं सौहार्द प्राप्त हुआ, जिन्होंने हमारी यथेष्ट सहायता की, पञ्चाङ्ग प्रवर्तक दिवङ्गत पं० रामशरणदास रचित 'विवाह पद्धति' को भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतः उक्त सभी गतागत महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। वेद भगवान् का भी वाह्याभ्यान्तर दर्शन करने का पुण्य प्राप्त किया। सर्वोपरि हम 'हिन्दू शिक्षा समिति (पं) किशतवाड़ १८२२०४' के प्रबन्धकों के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने हमारे इस लोक हितार्थ प्रयास को साकार रूप देने में यथेप्ठ सहायता देकर सफल बनाया।

॥ विज्ञ पाठकों से नम्र निवेदन ॥

यद्यपि पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने में विशेष सावधानी से काम लिया गया है तथापि मानव स्वभाव सुलभ कुछ त्रुटियों का इसमें होना नितान्त सम्भाव्य है । अतः विद्वान पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे उन त्रुटियों के सुधारार्थ आवश्यक सुझाव देकर हमें अनुग्रहीत करें ताकि आगामी संस्करण में त्रुटियों का सुधार कर पुस्तक की उपयोगिता बढ़कर जनकल्याण हो सके । अतः एक बार फिर निवेदन है कि सुधार कर हमें उपकृत करें क्योंकि :—

भवति विज्ञतमः क्रमशो जनः ॥ अन्य चः

भ्रमरा मधुमिच्छन्ति व्रणमिच्छन्ति माक्षिकाः ।
सज्जना गुणमिच्छन्ति दोषमिच्छन्ति पामराः ॥ अन्त में :
सर्व मंगल माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तुते ॥
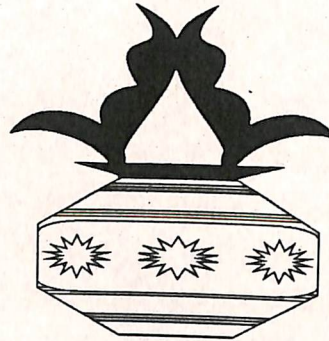
— विदुषामनुचरः दुर्गालाल शर्मा ॥

॥अत्रादौ धर्म शास्त्र प्रकरणम्॥

शास्त्र का कथन है :

अनाश्रमी न तिष्ठेत, क्षणमेकमपि द्विजः।
आश्रमादाश्रमंगच्छे, देष धर्मः सनातनः ॥१॥

अर्थात् द्विजको बिना आश्रम के एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए। एक आश्रम का यथोचित पालन कर दूसरे आश्रम में प्रवेश करना ही सनातन धर्म है ॥१॥

शास्त्र में मनुष्य की पूर्णायु सौ वर्ष आधार मानकर मानव जीवन को चार भागों में बांटा गया है, जिन्हें आश्रमों की संज्ञा दी गई है। यथाः जन्म से २५ वर्ष पर्यन्त 'ब्रह्मचर्याश्रम' २५ तः ५० वर्ष पर्यन्त 'गृहस्थाश्रम' ५० से ७५ वर्ष पर्यन्त 'बाणप्रस्थाश्रम' तथा ७५ से शेष आयु पर्यन्त 'सन्यासाश्रम' ॥

महर्षि कश्यप का कथन है :

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, गृहस्थाश्रममुत्तमम्।
य आधारोऽन्याश्रमाणां, भूतानां प्राणिनां तथा।
ऋण त्रयच्छेदकारी, धर्म कामार्थ सिद्धिदम् ॥२॥

अर्थात् गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थों को देने वाला, देवऋण, ऋषिऋण एवं पितृ ऋण से मुक्त कराने वाला होने के कारण गृहस्थाश्रम को प्रधान माना गया है। मानव जीवन का परम लक्ष्य उपरोक्त उपलब्धियां ही हैं ॥२॥

'संस्कारेण द्विजोत्तमः'

अर्थात् संस्कारों से मनुष्य द्विज (द्विजन्मा) कहलाता है। संस्कार यथा— गर्भाधान, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयनादि संस्कारों का आधार 'विवाह संस्कार'— गृहस्थाश्रम का प्रवेशद्वार है। अतः 'विवाह संस्कार' सर्व प्रधान है।

गृहस्थाश्रम को सुचारु ढंग से चलाने के लिए तथा उपरोक्त फल प्राप्त्यर्थ सद्गुण सम्पन्न, सुशीलवती गृहिणी का होना अनिवार्य है। महर्षियों का कथन है :

रत्नहेमाद्यलङ्कारा:, भोग: मृगमदादय:।
व्यर्थ: सर्वे न राजन्ते, हर्म्याणिस्त्रियमन्तरा।
एतत्सर्वं स्थितिं स्त्रीषु, सुशीलवृतान्वितासु ॥३ ॥

रत्नस्वर्णादि अलङ्कार अवांच्छनीय है। मंगलकृत्यों में अर्द्धाङ्गिनी का होना परमावश्यक है ॥३ ॥ बिना स्त्री के सन्तानोत्पति नहीं और बिना पुत्र के परलोक में सद्गति नहीं होती है। निष्कर्ष यह कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश मनुष्य मात्र के लिए अनिवार्य 'धर्म बन्धन' है। अतः विवाह अवश्य करना चाहिए।

॥वर-कन्ययोर्वरणे गोत्र शुद्धि विचार: ॥

पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं, मातृत: पितृत: क्रमात्।
सपिण्डिता निवर्तेत, सर्वे वर्णेष्वयं विधि: ॥
असपिण्डाजपिवृत:, सप्तमात्पौरुषात्परम्।
मातृत: पञ्चमादूर्ध्वं, समानार्ष गोत्रजाम् ॥

भाषा : जिन का आपस में एक ही गोत्र हो— 'सगोत्रीय' कहलाते हैं। चौथी पीढ़ी से लेकर तीन पीढ़ी अर्थात् चौथी, पाञ्चवीं, छठी पीढ़ीं तक के पुरुष— 'लेपभुज' कहलाते हैं और पिता आदि से तीन पीढ़ी— पिता, पितामह, प्रपितामह, ये तीन पीढ़ी के पुरुष— पिण्डभागी होते हैं और सातवाँ

पिण्ड देने वाला— ये सात पुरुष तक यानि सातवीं पीढ़ी तक सपिण्डीय कहलाते हैं । मातृ पक्ष से ५वीं पीढ़ी और पितृपक्ष से सातवीं पीढ़ी तक वर और कन्या का विवाह शास्त्र में वर्जित है । गोत्र से अभिप्राय परिवार, वंश, कुल परम्परा— यथा कौशिक गोत्रोत्पन्नोऽहम् ॥

॥वरस्य गुणावगुण विचारः ॥

कुलं च शीलं च सनाथतां च विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च ।
वरे गुणान् सप्त परीक्ष्यदेया कन्यां बुद्धैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

भाषा : जिसका कुल अच्छा हो, चरित्रवान् हो, सनाथ हो, विद्वान, धनवान्, स्वस्थ तथा आयु में अधिक न हो— बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे सात गुणयुक्त वर के प्रति कन्या को देना चाहिए ॥ (आयु में अधिक से तात्पर्य— कन्या आठ की और वर साठ का) ॥

अन्धोमूकः क्रियाहीन, श्चापस्मारी नपुँसकः ।
दूरस्थः पतितः कुष्ठी, दीर्घरोगीवरो न सत् ।

नात्यसन्ने नातिदूरे, नात्याढ्ये नाति दुर्बले ।
वृत्तिहीने च मूर्खे वटसु कन्या न दीयते ॥

मूर्खो निर्धन दूरस्था, च मोक्षाभिलाषिनां च ।
त्रिगुणाधिक वर्षाणां, न देयाज्जातु कन्यका ॥

भाषा : अन्धे, गूंगे, कर्महीन, कुष्ठ, मृगी, राजयक्ष्मादि से युक्त, नपुँसक, सदापरदेशवासी, जातिभ्रष्ट, अत्यन्त दूर वा समीपस्थ, अपने से अधिक धनी वा निर्धन, आजीविकारहित, मूर्ख, संसार से विरक्त—मोक्षाभिलाषी, कन्या से तिगुनी अवस्था वाला, कन्या से जो आयु में छोटा हो— ऐसे वर को कन्या नहीं देनी चाहिए ॥ (भले ही कन्या कुँवारी रहे । विपरीत आचरण करने वाला कन्या का पिता शोक-संताप का भागी बनता है तथा अन्त में नरक का भागी बनता है)

॥अथ कन्ययोर्वरणे गुणावगुण विचारः ॥

(क) भद्र कुलोत्पन्न, लज्जाशील, मृदुभाषिणी, गृहकार्य कुशल, कोमलाङ्गी, स्वस्थ किन्तु अङ्गहीन न हो— ऐसी कन्या श्रेष्ठ कही है ।
(ख) वाचाल, काकस्वरवाली, चञ्चल, कलह करने वाली, पिङ्गल वर्ण वाली तथा रोगी कन्या का वरण अवाञ्छनीय एवं कष्टदायक है ।

॥अथ शुभकृत्येषु वर्जित मासादयाः ॥

अधिक न्यूनमासौ वै, सिंह चापाश्रितं रविम् ।
अस्तं शुक्रेज्ययोर्बाल्यं, वृद्धत्वं पितृपक्षकम् ॥२ ॥

विश्वघस्त्रदलंचेति विष्टिंचादर्शनं विधोः ।
वैधृत्यादि दुष्टयोगा न्पितृश्राद्ध दिनान्यपि ॥२ ॥

चैत्रस्यासित पक्षन्तु, संक्रान्ति दिवसं तथा ।
मासान्ते वासरं ह्येकं, तिथ्यान्ते घटिका द्वयम् ॥३ ॥

नक्षत्रान्ते घटि तिस्रो, ऽवमातिथिं तथैव च ।
सूर्येन्दु ग्रहणादिञ्च, शुभकृत्येषु सन्त्यजेत् ॥४ ॥

भाषा : अधिमास (मल मास) , न्यूनमास (क्षयमास), भ्रादपद तथा पोषमास, शुक्र तथा गुर्वास्त तथा उनका बाल्यत्व, वृद्धत्व, पितृपक्ष, २३ दिन का पक्ष, भद्रा तिथि, चन्द्रास्त, वैधृत्यादि दुष्टयोग, माता-पिता का श्राद्ध दिन, चैत्रकृष्ण पक्ष, संक्रांति दिन, मास का अंतिम दिन, तिथि के अन्त की दो घड़ियां, नक्षत्रान्त की तीन घड़ियां, क्षयतिथि तथा सूर्य और चन्द्र ग्रहण शुभ कार्यों में त्यागने चाहिए ॥

सिंह धन्वन्त्यगे भानुं, सिंहे सिंहांशगं गुरुम् ।
अद्दशेन्दुं कवीज्यास्तं, तयोर्बाल्यं च वार्द्धकम् ॥

अधिक क्षयमासौ वै, पितृपक्षादिकं तथा ।
अन्यानपित्वसद्दोषान्, विवाहे च परित्यजेत् ॥

भाषा : सिंह, धनु तथा अन्त्यमास अर्थात् भाद्रपद, पौष और चैत्र मास, सिंह राशि में तथा सिंह के नवमांश में स्थित गुरु, चन्द्र, शुक्र एवं गुर्वास्त, इनकी बाल्य एवं वृद्धावस्था (शुक्र तथा गुरु की अस्त से पूर्व वृद्धावस्था और उदय के पश्चात् बाल्यावस्था होती है । यह अवस्थायें अधिकाधिक १५ दिन और कम से कम ३ दिन तक रहती हैं । अधिक मास, न्यूनमास पितृपक्ष आदि एवं शास्त्रोक्त अन्यदुष्टयोग भी विवाह में वर्जित हैं ॥

मघा नक्षत्रगते सिंहांशगतेच गुरौ सर्व देशेषु सर्व माङ्गलिक कर्माणां निषेधः ।
कर्ण वेध चौल मौञ्जीबन्ध विवाह देवयात्रा व्रत वास्तुकर्म देव प्रतिष्ठा सन्यास विशेषतो वर्ज्या इति ॥

भाषा : मघा नक्षत्रगत तथा सिंह राशिगत गुरु काल में कर्णवेध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, देवस्थान यात्रा, व्रत, वास्तुकर्म (गृह निर्माण वा गृह प्रवेश), देव प्रतिष्ठा एवं सन्यासदीक्षा— ये माङ्गलिक कर्म सब देशों में सर्वथा वर्जित हैं ॥

॥ अथ विवाहे जन्म मासादि निषेधः ॥

न जन्ममासे जन्मर्क्षे, न जन्मदिवसोऽपिवः ।
आद्यगर्भसुतस्याथ, दुहितुर्वा करग्रहः ॥२ ॥

आद्यगर्भ सुतकन्ययोर्द्वयो जन्मासमतिथौ करग्रहः ।
नोचितोऽथा विबुधैः प्रशस्यते चेद्द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ॥२ ॥

ज्येष्ठ द्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिष्टं त्रिज्येष्ठचेन्नैव युक्तं कदापि ।
केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोह्य चाहु नैंवान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद् विवाहः ॥३ ॥

भाषा : जन्ममास, जन्म नक्षत्र, जन्म दिन में पहले गर्भ के पुत्र वा कन्या का विवाह न करे ॥२ ॥ (जन्म दिन से लेकर ३० दिन तक जन्ममास कहलाता है) ॥ जन्ममास, जन्म नक्षत्र, जन्म तिथि में आद्यगर्भ के पुत्र कन्या का विवाह उचित नहीं है । द्वितीय गर्भ वाले बालकों को जन्ममासादि में किया हुआ विवाह पुत्र देने वाला होता है ॥२ ॥ ज्येष्ठ होता है । ज्येष्ठमास, ज्येष्ठ पुत्र अथवा ज्येष्ठमास ज्येष्ठ कन्या ये ज्येष्ठद्वन्द्व (द्विज्येष्ठ) दो ज्येष्ठ होता है । ज्येष्ठमास, ज्येष्ठ पुत्र, ज्येष्ठ कन्या— ये त्रिज्येष्ठ विवाह में कदापि योग्य नहीं हैं । कोई कृत्तिका के सूर्यपर्यन्त द्विज्येष्ठ-त्रिज्येष्ठ का दोष नहीं— कोई कृत्तिका के सूर्यपर्यन्त द्विज्येष्ठ-त्रिज्येष्ठ का दोष नहीं— ऐसा कहते हैं । वस्तुतः प्रथम गर्भ के वर वा कन्या का परस्पर ज्येष्ठ मास में

विवाह शुभ नहीं ॥३ ॥ जन्ममास, जन्म दिन, जन्म नक्षत्र में पहले गर्भ के पुत्र वा कन्या का विवाह वर्जित है किन्तु अत्यावश्यक परिस्थिति में वसिष्ठ, गर्ग, अत्री, भागुरी के मातनुसार :

जात दिनं दूषयते वसिष्ठः पञ्चैव गर्गस्त्रिदिनं तथात्रिः।
तज्जन्मपक्षं किलभागुरिश्च व्रते विवाहे गमने क्षुरे च॥

भाषा : वसिष्ठमतानुसार जन्म दिनं छोड़ दे, गर्ग जी के मत से ५ दिन, अत्री के मत से ३ दिन तथा भागुरयाचार्यमतानुसार मास में पक्षभर छोड़ कर विवाह करले ॥

॥ अथान्ते विवाहे विशेषविषयोपरिविचारः ॥

पुत्रोद्वाहात्परं पुत्री विवाह न ऋतु त्रये।
कुर्यान्नव्रतं उद्वाहान् मङ्गले नाप्यमङ्गले ॥१ ॥
न चैक जन्मनोः पुँसो रेकजन्मे तु कन्यके।
नूनं कदाचिदुद्वाह्यो नैकदामुण्डन द्वयम् ॥२ ॥

भाषा : पुत्र विवाह के बाद छः मास तक अपनी वा अपने कुल की कन्या का विवाह न करे । अर्थात् लड़की के विवाह के बाद लड़के का विवाह हो सकता है । इसी प्रकार विवाह से पीछे छः मास तक मुण्डन वा यज्ञोपवीत वर्जित है ॥

- दो सगे भाइयों का विवाह दो सगी बहिनों से न करे ।
- ज्येष्ठ मास की तरह मार्गशीर्ष मास भी आद्य गर्भ के विवाह में वर्जित है ।
- दो सगे भाइयों का विवाह छः मास के भीतर न करे । दो सगे भाइयों का वा भाई-बहिन का विवाह अथवा दो सगी बहिनों का एक संस्कार छः मास में न करे ॥ मङ्गलकार्य के पीछे नौ मास तक पितृ कर्म न करे अथवा वर्ष भेद के हो जाने से यानि वर्ष परिवर्तन होने पर छः मास भीतर भी हो सकता है । यथाः माघफाल्गुन में विवाह हो जाए तो वैशाख में जातक का यज्ञोपवीत करने में कोई दोष नहीं । इत्यलम् । शुभमऽस्तु ! कल्याणमऽस्तु ! !

॥ अथात्र मुहूर्त्त प्रकरणम् ॥

॥ आदौ मुहूर्त्त प्रशंसा ॥

आदौ सम्पूर्ण फलदं मध्ये मध्य फलं भवेत् ।
अन्ते स्वल्पफलं ज्ञेयः लग्ने सर्वत्र कर्मणिः ॥१॥
भार्या त्रिवर्ग करणं शुभ शील युक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः ।
तस्माद्विवाह समयः परिचिन्त्यते हि
तन्निघ्नतामुपगताः सुतशील धर्माः ॥२॥

भाषा : किसी भी माङ्गलिक कार्य में लग्न का आरम्भ काल अमुक कार्य को पूर्ण फल प्रदान करता है, मध्य काल मध्य फल प्रद तथा अन्तकाल तृतीयांश फलदायी होता है ॥२॥ शुभशीलयुक्त भर्त्रादिकों को अनुकूल जो भार्या है वह धर्मार्थ काम त्रिवर्ग के साधन योग्य है; उसका शील लग्नाधीन है। 'स्त्रियों का विवाह और पुरुषों का उपनयन दूसरा जन्म है अतः इन समयों में जैसा लग्न हो उसके सदृश सन्तान, स्वभाव और धर्म होते हैं। देव, पित्र्य, ऋषि ये तीन ऋण गृहस्थ पर रहते हैं तथा इनसे उऋण करने वाली शुभ सन्तान होती है और ये सन्तान शुभ लक्षण युक्त स्त्री के आधीन है। अतः विवाह का समय (लग्न) चिंतन करना परमावश्यक है ॥२॥

॥ अथ कन्यावरण मुहूर्तः ॥

विश्वस्वातीवैष्णव पूर्वात्रयमैत्रै र्वस्वाग्नेयैर्वा कर पीडोचित्त ऋक्षैः ।
वस्त्रालङ्कारादि समेतैः फल पुष्पैः सन्तोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥

भाषा : उत्तराषाढ़, स्वाती, तीनों पूर्वा (आषाढ़, भाद्रपद, फाल्गुनी), अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका में तथा विवाहोक्त नक्षत्रों में वस्त्राभूषण, फल और पुष्पों से विधिपूर्वक कन्या को प्रसन्न कर, उसे वरे ॥

॥ अथ वर वरण मुहूर्त्तः ॥

धरणिदेवोऽथवा कन्यका सोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः ।
वर वृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिनः ध्रुवयुतैर्वह्नि पूर्वात्रयैराचरेत् ॥

भाषा : पुरोहित अथवा कन्या का सहोदर भाई शुभ वारादि दिन में तथा ध्रुव नक्षत्रों सहित कृत्तिका, पूर्वात्रय में गीतवाद्यादि मङ्गलपूर्वक वस्त्राभूषण यज्ञोपवीतादिकों से वर का वरण करें ॥

॥ अथ कन्या विवाह कालः ॥

गुरु शुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेशु षडब्दकोपरिष्टात् ।
रविशुद्धि वशाच्छुभोवराणा मुभयोश्चन्द्र शुद्धितो विवाहः ॥

भाषा : कन्या की गुरु शुद्धि, वर की सूर्यशुद्धि तथा दोनों की चन्द्र शुद्धि में कन्या की अवस्था छः वर्ष ऊपर सम वर्षों में, वर के विषम वर्षों में विवाह शुभ होता है ॥ हमारे विचार में वर्तमान् प्रचलित प्रथा अनुसार वर-कन्या के यौवनावस्था में पदार्पण करने पर अर्थात १८ वर्ष से ऊपर की आयु में धर्मशास्त्र सम्मत विषम-सम वर्षों में विवाह परिपक्व, मंगलमय एवं युक्ति संगत होगा ॥

॥ अथात्र ग्रहाणां गोचरशुद्धि विचारः ॥

त्रिकर्म लाभारिगतः प्रशस्तः व्यथा प्रदाः प्रान्त्यसुखाष्टमस्था ।
त्रिकोण जायाद्य धनाश्रितो वै रवि शुभः स्याद् बहुपूजनेन ॥१ ॥

सुखे रन्ध्रे व्यये नेष्टः पूज्यस्तनवरिगाः शशिः ।
अन्येषु शुभदोनित्यं विवाहे व्रत कर्मणि ॥२ ॥

सुखे सर्वेषुशस्तः इत्यनेके कथ्यन्ति च ।
एवं चन्द्रमसः शुद्धि र्ग्राह्या गोचर वीक्षणात् ॥३ ॥

वटु कन्या जन्म राशि स्त्रिकोणाय द्वि सप्तगः ।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्या द्यै पूज्याऽन्यत्र निन्दितः ॥४॥

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रेवा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।
रिः फाष्ट तुर्यगोपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसत् ॥५॥

भाषा : गोचर में जन्मराशि से सूर्य ३/६/१०/११ भावस्थ शुभ, ४/८/१२ भावस्थ दुःखप्रद, १/२/५/७/९वें भावगत सूर्य विशेष पूजन से शुभ होता है ॥१॥ विवाह और यज्ञोपवीत में जन्मराशि से चन्द्रमा ४/८/१२ भावस्थ अशुभ, १/६ भावगत पूज्य तथा २/३/५/७/९/१०/११ भावस्थ सर्वथा शुभ होता है ॥२॥ कुछ आचार्य शुक्ल पक्षीय चन्द्रमा सब भावों में शुभ होता है— ऐसा कहते हैं, इस प्रकार गोचर से चन्द्रमा की शुद्धि ग्रहण करनी चाहिए ॥३॥ बालक के यज्ञोपवीत और कन्या के विवाह में जन्म राशि से २/५/७/९/११ भावस्थ गुरु श्रेष्ठ, १/३/६/१० भावगत पूज्य एवं ४/८/१२ भावस्थ नेष्ट होता है ॥४॥ यदि गुरु अपनी उच्च राशि (कर्क), स्वराशि (धनु, मीन), मित्र राशि, स्वांश एवं वर्गोत्तमांश में स्थित हो तो अशुभस्थानगत होने पर भी शुभ होता है और यदि नीच अथवा शत्रुराशिस्थ हो तो शुभस्थानीय भी अशुभ होता है ॥५॥ विशेष : '**सर्वत्र शुभं द्यादद्वादश— वर्षात्परं गुरुः ।**' अर्थात् १२ वर्ष से अधिक आयु वाली कन्या को सर्व भावगत गुरु शुभ फलप्रद है ॥

॥ अथ गोचर शुद्ध्यभावेऽष्टवर्ग शुद्धि विचारः ॥

अष्टवर्ग विशुद्धेषु गुरु शीतांशु भानुषु ।
व्रतोद्वाहो प्रकर्त्तव्यौ गोचरेणान्यथा तुचेत् ॥२॥

यस्माद्राशेर्ग्रहोयश्च स्याद् दुःस्थानेषुगोचरे ।
अष्टवर्गात्तु तस्यैव तद्राशेफलमाप्नुयात् ॥२॥

शुभादिके शुभो नित्यं शुभेऽल्पे सर्वगोऽशुभः ।
शुभाशुभफले साम्ये पूजयास्याच्च सौख्यदः ॥३॥

भाषा : अष्टवर्ग से शुद्ध होने पर यदि सूर्य, चन्द्र और गुरु गोचर में अशुभ होवें तो भी यज्ञोपवीत और विवाह करना चाहिए ॥१॥ गोचर में जिस राशि से जो ग्रह निकृष्ट स्थान में हो, उस ग्रह के अष्टवर्ग से ही उस राशि का शुभाशुभ फल प्राप्त करना चाहिए ॥२॥ शुभ फल अधिक होने पर यह ग्रह शुभ तथा न्यून होने पर अशुभ एवं समान होने पर वह पूजा से सौख्य प्रद होता है ॥

॥ द्विगर्त प्रान्ते विवाहे निषिद्धदोषः ॥

वेधोऽथ भार्गवयुतिश्च महाविपातः
दोषा इमे नहिभवन्ति शुभः द्विगर्ते।
एवं त्यजेत्तुमतिमाँश्च विवाहकाले
खर्जूर दोषमपि कष्टनिवारदेशे ॥

भाषा : द्विगर्त प्रान्त में वेध, शुक्रयुति, क्रांति साम्य— ये दोष शुभ नहीं होते हैं । इनके अतिरिक्त कष्ट निवार (किशतवाड़) प्रदेश में बुद्धिमान् एकार्गल दोष का भी परित्याग करें ।

(दिवंगताचार्य पं० हरिलाल शर्मा 'व्यास' किश्तवाड़)

॥ अथ विवाहे विहित नक्षत्राणि: ॥

निर्विधैः शशिकरमूल मैत्र पित्र्य ब्राह्यांत्योत्तर पवनैः शुभो विवाहः ॥

भाषा : वेधरहित मृगशिरा, हस्त, मूल, अनुराधा, मघा, रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद एवं स्वाति नक्षत्र विवाह में शुभ हैं ॥

॥ अथ विवाहे लग्न शुद्धिः ॥

त्याज्यालग्नेऽन्धयोमन्दात् षष्ठे शुक्रेन्दु लग्नपः ।
रन्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेब्ज गुरु समौ ॥१ ॥

कार्मुक तौलिक कन्या युग्मलवेझषगेवा ।
यर्हिभवेदुपयमा स्तर्हि सती खलु कन्या ॥२ ॥

अन्त्यनवमांशे न परिणेया काचनवर्गोत्तममिह हित्वा ।
नोचरं लग्ने चरलवयोगं तौलिमृगस्थे शशभृति कुर्यात् ॥३ ॥

लग्नात्पापावृज्वनृजू व्ययार्थास्थौयदा तदा ।
कर्त्तरी नाम सा ज्ञेया मृत्युदारिद्र्य शोकदा ॥४ ॥

जन्मलग्नभयोर्मृत्यु राशो नेष्टः करग्रहः ।
एकाधिपत्ये राशीशे मैत्रे वा न दोषकृत् ॥५ ॥

पापौ कर्त्तरिकारकौरिपुगृहे नीचास्तगोकर्तरी ।
दोषी नैव सितेऽरि नीचगृहगे तत्षष्ठदोषोऽपि न ॥६ ॥

भौमेऽस्ते रिपुनीचगे नहिभवेद् भौमोऽष्टमो दोषकृत् ।
नीचे नीच नवांशके शशिनि रिः फाष्टारिदोषोऽपिन ॥७ ॥

हिबुकधर्मसुतोऽद्यकर्मसु त्रिदशगुरुशशिजेयदिवासिते ।
यदशुभं शुभतां समुपैति तच्छुभफलं नितरामभिवर्धते ॥८ ॥

भाषा : विवाह लग्न के प्रथम भाव में शनि, सूर्य, चन्द्र तथा भौम त्याज्य हैं । षष्ठभाव में शुक्र, चन्द्र और लग्नेश नहीं होने चाहियें । अष्टमभाव में चन्द्र, भौम, बुध, गुरु और भार्गव ये पाञ्च ग्रह न हों । सप्तम भाव गृह रहित होना श्रेष्ठ है किन्तु सप्तम भावस्थ चन्द्र एवं बृहस्पति को सम माना जाता है ॥१ ॥ धनु, कन्या, तुला मिथुन और मीन इन राशियों के नवमांश यदि विवाह लग्न हों तो निश्चय ही कन्या पतिव्रता होती है ॥२ ॥ लग्न के अन्तिम नवमांश पर कन्या का विवाह न करें । किन्तु यदि अंतिम नवमांश वर्गोत्तम हो तो उसमें विवाह हो सकता है । तुला अथवा मकर राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो चर लग्न के चर नवमांश में विवाह न करें ॥३ ॥ लग्न से द्वादशभाव में मार्गी तथा द्वितीयभाव में वक्री पाप ग्रह हों तो कर्त्तरी नामक दोष होता है । यह दोष मृत्यु एवं दरिद्रता तथा शोकप्रद होता है, विवाह लग्न में यह दोष त्याज्य है ॥४ ॥ जन्म लग्न और जन्मराशि से अष्टम लग्न पर विवाह नहीं होता है, किन्तु जन्म लग्न या जन्म राशि का स्वामी अष्टमेश भी हो या लग्नेश और अष्टमेश परस्पर मित्र हों तो अष्टम लग्न विवाह में दोषकारक नहीं होता है ॥५ ॥ उपर्युक्त कर्त्तरिदोषकारक पापग्रहयदि नीच राशि, शत्रु राशि या अस्तंगत हो तो कर्त्तरी योग दोषकारक नहीं होता । षष्ठ भावस्थ शुक्र शत्रु अथवा नीच राशि में हो उसका कोई दोष नहीं ॥६ ॥ चन्द्रमा नीच राशि या नीच नवमांश में हो तो उसका विवाह-लग्न से ६/८/१२ भावस्थ होना दोषकारक नहीं । मंगल यदि नीच राशि या अस्तंगत हो तो उसका अष्टम भावस्थ होने में कोई दोष नहीं होता है ॥७ ॥ लग्न से १/४/५/९/१० भावस्थ गुरु, शुक्र या बुध के स्थित होने पर जों कोई अशुभयोग लग्न में हो तो वह शुभता को प्राप्त करके सदैव शुभ फल की ही वृद्धि करता है ॥८ ॥

॥ अथान्ते गोधूलिलग्नं कथ्यते ॥

नास्यामृक्षंन तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता
नो वा वारोनोचलवविधि र्नो मुहूर्त्तस्य चर्चा ।
नोवा योगो न मृति भवनं नैव यामित्र दोषो
गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषुशस्ता ॥१ ॥

पिण्डीभूते दिनकृति हेमन्ततौं स्यादर्द्धास्ते तप समये गोधूलिः ।
सम्पूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधायोज्या सकल शुभे कार्यादौ ॥२ ॥

अस्तं याते गुरु दिवसे सौरे सार्के लग्नान्मृत्यौ रिपुभवने लग्ने चेन्दौ ।
कन्यानाशस्तनुमदमृत्युस्थेभौमे वोदुर्लाभे धन सहजे चन्द्रे सौख्यम् ॥३ ॥

भाषा : गोधूलि लग्न में नक्षत्र, तिथि, करण, वार, नवमांश-विचार, मुहूर्त, योग, अष्टमभाव शुद्धि एवं जामित्र दोष के चिंतन करने की आवश्यकता नहीं । गोधूलि लग्नमुनिजनों ने सब कार्यों में शुभ माना है ॥१ ॥ मार्गशीर्ष, पौष, माघ एवं फाल्गुन इन शीत प्रधान मासों में सूर्यास्त समय जब सूर्य गोलाकार हो तो गोधूलि होती है । ऊष्ण प्रधान चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आपाढ़ मासों में सूर्य के अर्द्धास्त होने पर तथा वर्षा प्रधान श्रावण, भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिक मासों में सूर्य के पूर्णास्त होने पर, ऐसी तीन प्रकार की गोधूली सब प्रकार के कार्यों में शुभ होती है ॥२ ॥ गोधूलि गुरुवार को सूर्यास्त पर तथा शनिवार को जब सूर्य अभी अस्त न हुआ हो— शुभ नहीं होती । गोधूली लग्न में अष्टम, षष्ठ तथा प्रथम भावस्थ चन्द्र— कन्या का घातक होता है तथा प्रथम, षष्ठ एवं अष्टमभावस्थ मंगल वर का नाशक और द्वितीय, तृतीय तथा एकादश भावस्थ चन्द्र— विशेष मंगलदायक होता है । **नोट :** विद्वान् पाठकों का यह जाना पहचाना विषय है किन्तु जिज्ञासु पाठकों को 'मुहूर्त्त-चिन्तामणि', 'मुहूर्त्त-मार्तण्ड' के विवाह प्रकरण का अध्ययन कर ज्ञान पिपासा बुझानी चाहिए ॥

॥ इति मुहूर्त प्रकरणम् ॥

विवाह विषयेवनद्रकलशादि निर्माण ।।
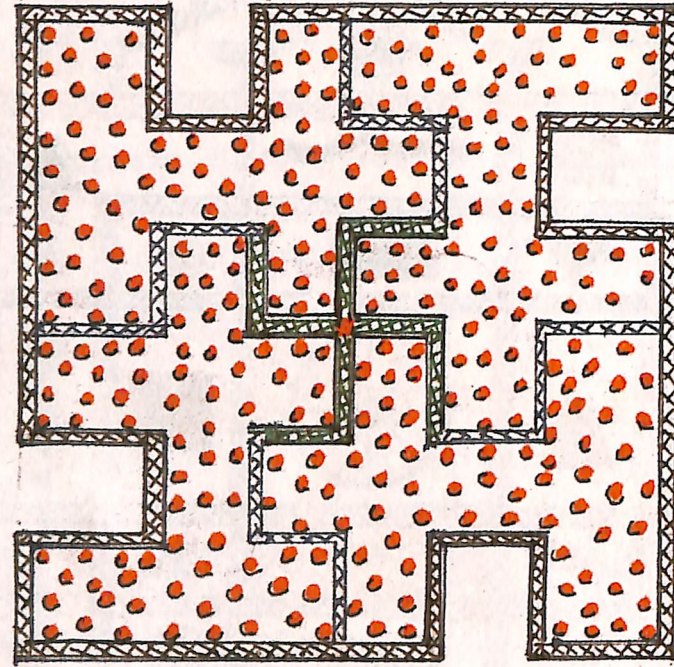
।। स्वस्तिरेखेयम् ।।
अश्मचूर्णेन
उल्लिखेत् ।।
।। गाङ्गोदकस्थापनार्थम् ।।

॥ अथाग्निकुण्डमिदम् ॥
अग्नि-
देवस्य
'सप्तजिह्वा:'
(१)
काली
(२)
कराली
(३)
मनोजवा
मुण्डकोप
अश्मचूर्णेन
१
२
३ ४ ५
६
७
॥ हवनार्थम्
अग्निकुण्डम् ॥
उल्लिख्वेत ॥
(४)
सुलोहिता
(५)
सुधम्र्वर्ण
(६)
स्फुलिङ्गनी
(७)
विश्वरुचीति
निषद्त:
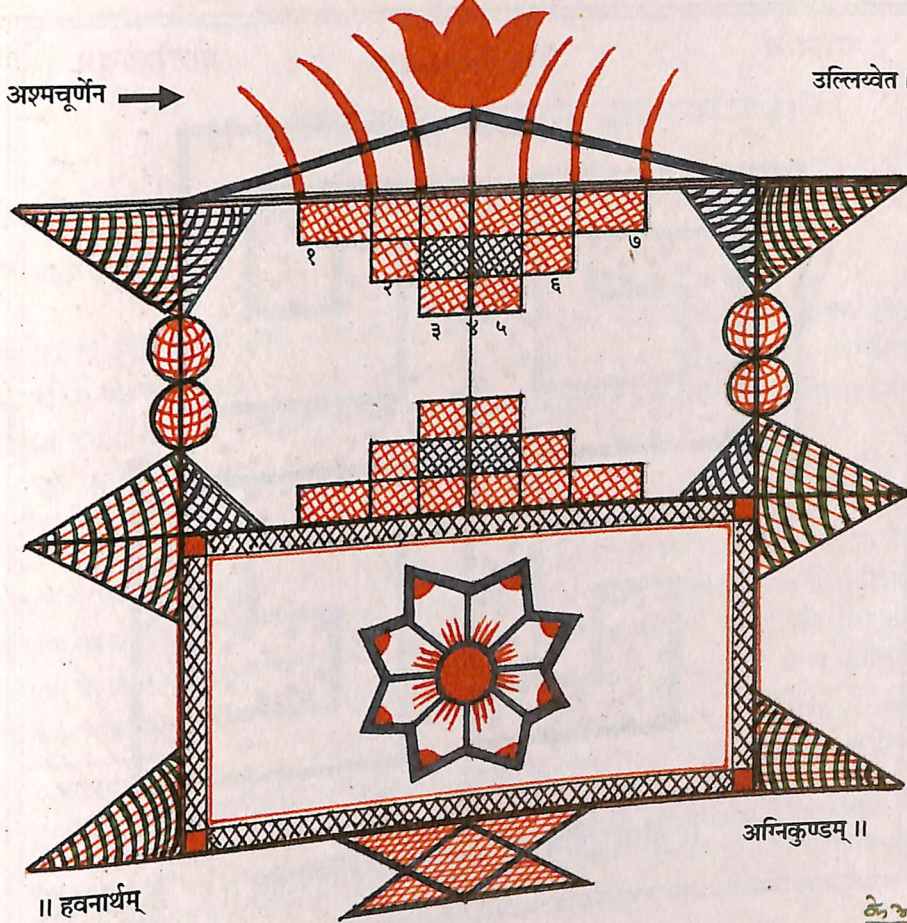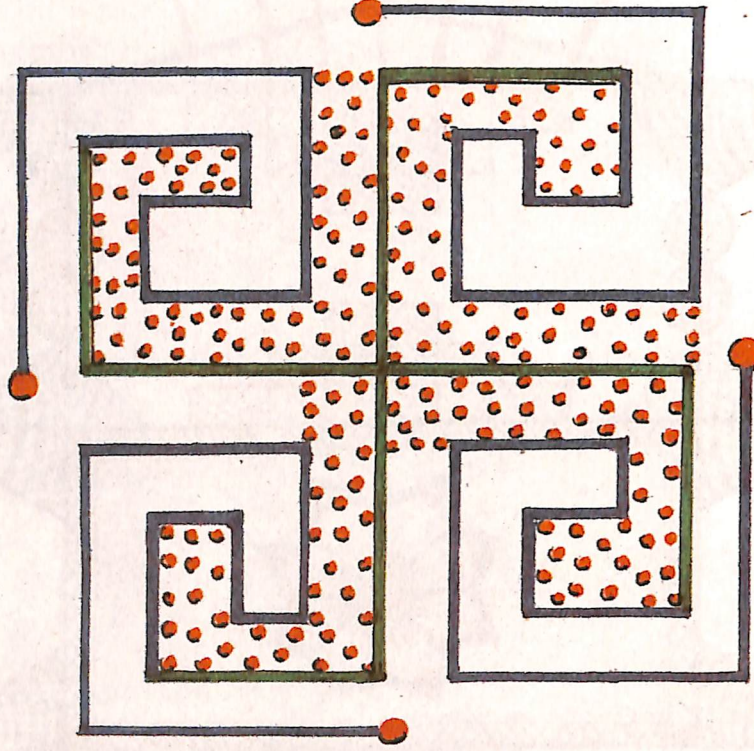
स्नानार्थं
पीठरेखेयम्
॥ अष्म्चूर्णेन शालिचूर्णेनवा उल्लिखेत् ॥

॥ अथग्रहादि स्थापन प्रकरणम् ॥

अत्रादौ गोमयेन भूमिशोधनं कृत्वा पश्चादश्मचूर्णेन शालिचूर्णेनवा यथानिर्दिष्ट शास्त्रोक्त ग्रहमण्डलमुल्लिखेत् । तद्दक्षिणे क्षेत्रेशद्वयार्थ पात्रद्वयं संस्थाप्य स्वत्ययनं भद्रपाठं च पठेत् इति ॥

भाषा : विवाह कृत्यके पूर्व ही आचार्य भली प्रकार गोबर से यज्ञ मण्डप की भूमि का लेपन करवाकर चूने अथवा चावलों के आटे से पिछले पृष्ठ पर दिखाए गये शास्त्र कथित ग्रह मण्डल की रचना करे । ग्रह मण्डल के दक्षिण भाग में (दायें हाथ की ओर अग्निकोण में) दो क्षेत्र पालों के पात्रों को स्थापित करे (धूप तथा दीपक जलाकर यथा निर्दिष्ट स्थान पर रखकर) पुनः स्वस्तिवाचन एवं भद्रपाठ मंगलकार्य के निर्विघ्न सिद्ध्यर्थ करे ॥ (देखें पृष्ठ संख्या २४ (क) पर)

विशेष : यहां जो ग्रहमण्डल का चित्र दिखाया गया है, [१]शास्त्र में प्रत्येक मंगलमय कार्य में उसके लिखने का उल्लेख है । कुछ पुरोहित लोग यहाँ लग्न कुण्डली सदृश राशिमण्डल लिखकर ग्रहों के चिह्नों की रचना करते हैं जिसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है । [२]ग्रहमण्डल एक, दो, चार अथवा आठ हस्त परिमाण का वर्गाकार बनाना चाहिए, इससे अधिक नहीं । इसके पूर्व में ब्रह्म कलशार्थ अष्टदल लिखें और पश्चिम में दो त्रिकोणों के संयोग से द्वार देवताओं के लिए पाँच कोष्ठकों की रचना करें । वामभाग में पक्षी आकार ध्रुव और दक्षिण हाथ अगस्त्यका कुंभाकार चिह्न की रचना करें । [३]ग्रहमण्डल के मध्य चतुष्कोण के नौ कोष्ठों में निम्न प्रकार ग्रहों के चिह्नों को अंकित करें : मध्य भाग में सूर्य, अग्निकोण में चन्द्रमा,

---

(१) अथोग्रतेजसां वक्ष्ये ग्रहाणांस्थापनं शिवे । मण्डलं सूपलिप्ते तु चतुस्रतु दिशिकार्येत् ॥ (इति ग्रहशान्तौ) (२) एकं द्विचतुरष्टहस्तं वोर्ध्व मंतोनहि । तिर्यक्चोर्ध्वं वेदरेख्वच देया मध्यस्थयोर्बहिः ॥ आऽर्ध कोष्ठम थैकेका नैर्ऋतिशर्वयोः पूर्णमूर्ध्वमऽधश्चाथ पूर्वेऽष्टदलं आलिखेत् । त्रिकोण द्वयसंयोगात् पश्चाद् द्वारेश संस्थितिः सौम्ये ध्रुवास्पदः पक्षीयाम्येऽगस्त्यस्य कुम्भकः ॥ (३) मध्ये भास्करमालिख्य वह्नौ चन्द्र तुदक्षिणे । भौमं चेशानतः सौम्यं लिखेत्सौम्य बृहस्पतिम् ॥ पूर्वे शुक्रं शनिं पश्चाद् राहुं नैर्ऋतकोणतः । वायवे शिखिनं चैव ग्रहाणां स्थापनं भवेत् ॥ चक्राकारो सोमसूर्यो सौम्यजीवो त्रिकोणकौ । चतुष्कोणौ भौम शुक्राऽवलोकभः शनैश्चरः ॥ यवमध्यंपताकाभराहुकेतु तमो बहिः । दिक्पालास्त्राणि सर्वाणिलिखेत्पूर्वेण वज्रकम् ॥ वह्नौ शक्तिं सुदण्डं च दक्षिणे नैर्ऋतेत्वसिम् । पश्चात् पाशं ध्वजं वायौ गदा सौम्य त्रिशूलकम् । ऐशान्यामथ पद्मास्त्रमूर्ध्वं चक्रमधो लिखेत् ॥

दक्षिणा में भौम, ईशान में बुध, बायें गुरु, पूर्व में शुक्र, पश्चिम में शनि, वायुकोण में केतु, नैर्ऋति कोण में राहु । सूर्य चन्द्र का चक्राकार चिह्न, बुध गुरु त्रिकोणाकार, मंगल-शुक्र चतुष्कोणाकार, शनि जालाकार, राहु पताकाकार और केतु यवाकार लिखें । पुनः मध्य चतुष्कोण के बाहिर दश कोष्ठकों में क्रम से : पूर्व कोण में वज्र, अग्निकोण में शक्ति, दक्षिण दिशा में दण्ड, नैर्ऋति कोण में खड्ग, पश्चिम दिशा में पाश, वायुकोण में ध्वजा, बायें अर्थात् उत्तर दिशा में गदा, ईशान कोण में त्रिशूल, ऊपर दायें अष्टदल और नीचे विष्णु चिह्न चक्र । इस प्रकार इन्द्रादिदस दिक्पालों के शास्त्रोक्त चिह्नों को अङ्कित करें । [४]ग्रहमण्डल के पश्चिम दिग्भाग में द्वार प्रवेश के पाँच कोष्ठों में वायु, नैर्ऋति, ईशान, अग्निकोण तथा मध्य में क्रम से गणेश, कुमार, श्री त्वष्टा (विश्वकर्मा), सरस्वती तथा लक्ष्मी की स्थापना करें । [५]बिना मण्डल रचना के जो साधक देव समुदाय का आवाहन करता है वह सफल मनोरथ नहीं होता, ऐसा भगवान त्रिभुवनेश्वर महादेव शङ्कर ने जगज्जननी जगदम्बा भगवती पार्वती से कथन किया है ।

अतः यज्ञ की सिद्धि के लिए साधक को ऊपरिवर्णित विध्यानुसार चित्राङ्कित ग्रह मण्डल की रचना अनिवार्य रूप से करनी चाहिए जिससे देवगण प्रसन्न होकर यथेष्ट फल प्रदान करेंगे ॥

इति ग्रहाणां शास्त्रोक्तस्थापन विधिः
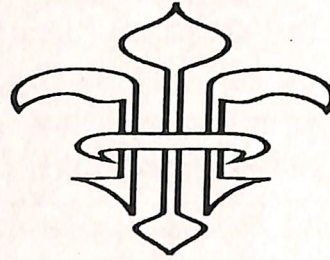
(४) बाखस्रपेश कोणेषु गणेश, स्कन्धश्री ह्वयान । वाणीं लक्ष्मी मध्यकोणे त्वष्टारमग्नि कोण के ॥ (५) न मण्डलस्य विना सिद्धि साधकस्य भवेत् प्रिये ॥ इतिग्रहशान्तौ ॥

॥ अथात्र (स्वस्तिवाचनम्) स्वस्त्ययनम् ॥

ॐ शुक्लाम्बर धरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ॥१॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः॥
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥२॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥३॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि गणेशस्य महात्मनः।
यः पठेत शिवोक्तानि स लभेत्सम्पदांपदम् ॥४॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥५॥
अभिप्रेतार्थ सिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुराऽसुरैः।
सर्व विघ्न हरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥६॥

ओङ्कारंयस्यमूलं क्रमपद जठरं छन्द विस्तीर्ण शाखा,
ऋक्साम पत्रं पुष्पं यजुरुचित्फलं स्यादथर्व प्रतिष्ठा।
यज्ञच्छाया सुशीता द्विजगणमधुपै र्गीयते यस्य नित्यं,
शक्तिः सन्ध्या त्रिकालं दुरितभयहरं पातुनो वेदवृक्षः ॥७॥

स्वच्छायास्थिर धर्ममूलवलयः पुण्यालवावन्वितो,
धी विद्या करुणा क्षमादिविलसद् विस्तीर्ण शाखाश्रितः।
सन्तोषोज्ज्वल पलवः शुचियशः पुष्पः सदा सत्फलः,
सर्वाशा परिपूरको विजयते श्री वेद कल्पद्रुमः ॥८॥

मूलाधाराद्धुत्वह कला मिश्रितं भूर्भुवः स्वः,
ब्रह्मस्थानात्परंगहनात् तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवः शशिकल्मयी धीमहीत्येक रूपम्,
धियो योनः परममृतं प्रचोदयान्नः परंतत् ॥९॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवल च्छायैर्मुख्वेस्तीक्षणैः,
युक्तमिन्दु निबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकरां शूलं कपालं गुणम्,
शंखं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥१०॥
आयातु वरदा देवि! त्र्यक्षरा ब्रह्मवादिनिः।
गायत्रि छन्दसां मात ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते ॥११॥

सर्वेश्वारम्भ कार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनारदनाः ॥१२॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थ धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवा नीति र्मतिर्मम ॥१३॥

सर्व मङ्गल मांगल्ये शिवे सवार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि! नारायणि! नमोऽस्तुते ॥१४॥

* * *

॥ अथ देवानामार्षम् ॥

'ओजोसीति गायत्रीमावाह्य देवानामार्षम्'

भाषा : 'ओजोऽसि' इस मन्त्र से भगवती गायत्री का आवाहन कर देवताओं का वेदोक्त पावन पाठ किया जावे ॥

ओजोऽसि सहोऽसि बलमऽसि देवानां धाम नामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुर्भिभूः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यों नः प्रचोदयात्, ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

॥ अथ कल्याण भद्रम् ॥

(ऋग्वेद मं० ३, अ० ४, सूक्त ५२, ऋषि स्वस्त्यात्रेयाः, देवता विश्वेदेवाः छन्दः चृत त्रिष्टुप, २ त्रिष्टुप, ३ पंक्तिः, ४/५ अनुष्टुप्, ६/७ बृहती)

नोट : विस्तार भय से अर्थ नहीं लिखा गया है जिज्ञासुपाठकगण उपर्युक्त वेद भगवान् से मण्डल अध्याय में मन्त्रानुवाद पढ़कर पिपासा बुझायें ॥

हरि ः ओ३म्

स्वस्तिनो मिमीतामश्विनः भगः स्वस्ति देव्यदितिरऽनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरोदधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥१ ॥
स्वस्तये वायुमुपब्रवामहे सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्व गणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥२ ॥
विश्वेदेवानो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।

देवा अवन्तृभवः स्वस्तये स्वस्तिनो रुद्रः पात्वंहसः ॥३ ॥
स्वस्ति मित्रा वरुणा स्वस्तये पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्तिनो अदिते! कृधि ॥४ ॥
स्वस्ति पन्थामनुचरेम् सूर्याचन्द्रमसामिव।
पुनर्ददता घ्नता जानता सङ्गमेमिह ॥५ ॥
स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमि महद् भूतं वायसं देवतानाम्
असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशो नावमिवारुहेम ॥६ ॥
अंहोमुचमङ्गिरसं गयञ्च स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम।
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्बाधेष्वभयं नो अस्तु ॥७ ॥

॥ कल्याणमऽस्तु इति कल्याण भद्रम् ॥

॥ अथाग्निभद्रम् ॥

('अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च वरुणः साम एव च।
ब्रह्मराजरथश्चैवमष्टोभद्राः प्रकीर्तिताः ॥')

भाषा : अग्नि, वायु, सूर्य, वरुण, साम, ब्रह्म, राजा और रथ— ये आठ मंगल हैं ॥

अग्नये समनमत्पृथिव्यै समनमद् यथाग्निः पृथिव्या सम नम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥१ ॥
वायते समनमदन्तरिक्षाय समनमद् यथा वायुरन्तरिक्षेण समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥२ ॥
सूर्याय समनमद् दिवेसमनमद् यथा सूर्यो दिवा समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥३ ॥
वरुणाय समनमद् अद्भ्यःसमनमद् यथा वरुणोद्भिः समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥४ ॥

साम्ने समनमद् ऋचे समनमद् यथा सामर्चा समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥५॥
ब्रह्मणे समनमत् क्षत्राय समनमद् यथा ब्रह्मक्षत्रेण समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥६॥
राज्ञेसमनमद् विशे समनमद् यथा राजा विशा समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥७॥
रथाय समनमद् अश्वेभ्यः समनमद् यथा रथाऽश्वैः समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥८॥

॥इत्याग्निभद्रं शुभम्॥

॥अथ शकुनिभद्रम्॥

(ऋग्वेद दूसरे मण्डल के अन्तिम दो सूक्त)

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण, इयर्ति वाचमरितेवनावम्।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि, मात्वा काचिदभिभा विश्व्याविदत्॥१॥
मात्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो, मात्वा विददिषु मानवीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्, सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह॥२॥
अवक्रन्दन् दक्षिणतोगृहाणां, सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नास्तेन ईशत माघशंसो, वृहद् वदेम विदथे सुवीराः॥३॥
प्रदक्षिणिदऽभि गृणन्ति कारवो, वयोवदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभेवाचो वदति सामगा इव, गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति॥४॥
उद्गातेव शकुने साम गायसि, ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या, सर्वतो नः शकुने!
भद्रं मावद विश्वतो नः, शकुने पुण्य मा वद॥५॥

भद्रं वद दक्षिणतो, भद्र मुत्तरतो वद।
भद्रं वद पुत्रै, र्भद्रं नो अभयं वद॥६॥
भद्रमधस्तान्नो वद, भद्रमुपरिष्टानो वद।
भद्रं भद्रन्न आवद, भद्रन्नः सर्वतो वद॥७॥
अस्पत्नं पुरस्तान्नः, शिवं दक्षिणतस्कृधि।
अभयं सततं पश्चाद्, भद्रमुत्तरतो गृहे॥८॥
योऽवनानि महयसि, जिग्युषामिव दुन्दुभिः।
शकुन्तक प्रदक्षिणं, शतपत्राभि नो वद॥९॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रं वद, तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिनः।
यदुत्पतन्वदसि करकरि, र्यथा वृहद् वदेम् विदथे सुवीराः॥१०॥

॥इति शकुनिभद्रम॥

॥अथेन्द्रभद्रम्॥

(ऋग्वेद मण्डल २, सूक्त ४२, ऋषि गृतसमद)

इन्द्रश्च मृळयातिनो न नः पश्चादधंनशत्। भद्रं भवाति नः पुरः॥१॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः॥२॥
विश्वेदेवास आगत श्रृणुता इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत॥३॥
तीव्रो वो मधुमां अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम्॥४॥
इन्द्र ज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे ममश्रुता हवम्॥५॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इवस्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥६ ॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूँषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढिनः ॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रियान्देवेषु जुह्वति ॥८ ॥

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवां युवामिदा वृणीमहे।
अग्निं च हव्य वाहनम् ॥९ ॥

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिवस्पृशम्।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥१० ॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तुयज्ञियाः। इहाद्य सोम पीतये ॥११ ॥

॥इत्यैन्द्रभद्रं शुभम् ॥

॥अथानो भद्रम् ॥

(निम्नदशऋचायें ऋग्वेद मण्डल १ से १९ की है)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥१ ॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्त्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२ ॥
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३ ॥

तन्नो वातो मयोभुवातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतंधिष्ण्या युवम् ॥४ ॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५ ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति न पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६ ॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं षावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७ ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं षदायुः ॥८ ॥
शतमिन्नु शरदो अन्तिदेवा षत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासोषत्र पितरो भवन्ति मा नो मद्धया रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९ ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदिति र्जनित्त्वम् ॥१० ॥

॥इत्यानो भद्रं शुभम् ॥

॥अथान्ते अशीति भद्रम् ॥

भद्रो नो अग्निः सुहवो विभावसु, र्भद्र इन्द्रः पुरूहुतः पुरुष्टुतुः ।
भद्रा सूर्य उरुचक्षा उरुण्यचा, भद्रश्चन्द्रमाः समिथेषु जागृविः ॥१ ॥
भद्रः प्रजा अजन्यन्नः प्रजापति, र्भद्रः सोमः पावमानो वृषा हरिः ।
भद्रस्त्वष्टा विदधद्रूपाण्यद्भुतो, भद्रो नो धाता वरिवस्यतु प्रजाः ॥२ ॥
भद्रस्तार्क्ष्यः सुप्रजस्त्वाय महा, नारिष्टनेमिः पृतना युधा जयन् ।
भद्रोवायुर्मातरिश्वा नियुत्पति, र्वेनो गयस्फान उशन्सदाऽस्तुनः ॥३ ॥

भद्रो मित्रो वरुणो रुद्र इद्वृधा, भद्रोऽहिर्बुध्न्यो भुवनस्य रक्षिता।
भद्रो नो वास्तोष्पतिरस्त्वमीवहा, भद्रा क्षेत्रस्य पतिर्विचर्षणिः ॥४॥
भद्रो विभुर्विश्वकर्मा बृहस्पति, र्भद्रो द्विषस्तपनो ब्रह्मणस्पतिः।
भद्रः सुपर्णो अरुणो मरुत्सखा, भद्रोनोवातो अभिवातु भेषजी ॥५॥
भद्रो दधिक्रा वृषभः कनिक्रदद्, भद्रः पर्जन्यो बहुधा विराजति।
भद्रः सरस्वां उत नः सरस्वती, भद्रो वशी भद्र इन्द्र पुरूरवः ॥६॥
भद्रोनः पूषः सविता यमो भगो, भद्रोऽग्रज एक पादर्यमा मनुः।
भद्रो विष्णुरुरुगायो वृषा हरि, र्भद्रो विवस्वां अभिवातु नस्तमना ॥७॥
भद्रा गायत्री कुकुभुष्णिहा विराड्, भद्रानुष्टुप् बृहती पंक्तिरस्तुनः।
भद्रा नस्त्रिष्टुब्जगती पुरु प्रिया, भद्रातिच्छन्दा बहुधा विभूवरी ॥८॥
भद्रानो राकानुमतिः कुहूः सहृद्, भद्रासिनिवाल्यादितिर्मही ध्रुवा।
भद्रानो द्यौरन्तरिक्षं मयस्करं, भद्रोश्वो दक्षस्तनयाय नस्तुजे ॥९॥
भद्रो नः प्राणः सुमनः सुवागसद्, भद्रो अपानः सतनोः सहात्मना।
भद्रं चक्षुर्भद्रमिच्छ्रोत्रमस्तुनो, भद्रं न आयुः शरदो असच्छताम् ॥१०॥
भद्रेन्द्राग्निनो भवंतामृतावृधा, भद्रानो मित्रावरुणा धृतव्रता।
भद्राश्विना नो भवतां नवेदसा, भद्राद्यावा पृथिवी विश्वम्भुवा ॥११॥
भद्रा न इन्द्रा वरुणा रिशादसा, भद्रा न इन्द्रा भवतां बृहस्पतिः।
भद्रेन्द्रा विष्णू सवनेषुयावृधा, भद्रेन्द्रा सोमा युधि दस्यु हन्तमा ॥१२॥
भद्राग्ना विष्णू विदधस्य प्रसाधना, भद्रानोऽग्नीन्द्रा वृषभा दिवस्पती।
भद्रानो अग्नीवरुणा प्रचेतसा, भद्राग्नीषोमा भवतां न वेदसा ॥१३॥
भद्रा सूर्याचन्द्रमसा कविक्रतू, भद्रा सोमा भवतां पूषणा नः।
भद्रेन्द्र वायु पृतना स्वसाहसी, भद्रा सूर्याग्नी अजिता धनञ्जया ॥१४॥
भद्रा नः सन्तु वसुवो वसु प्रजा, भद्रा रुद्रा वृत्रहणा पुरन्धरा।
भद्रा आदित्याः सुपसः सुनीतयो, भद्रा राजानो मरुतो विरप्सिनः ॥१५॥

भद्रा न ऊमा सुहवाः शतश्रियो, विश्वेदेवा मनवश्चर्षणी धृतः ।
भद्राः साध्या अभिभवः सूरचक्षसो, भद्रा नः सन्त्वृभवो रत्नधातमाः ॥१६ ॥
भद्रा सर्वे वाजिनो वाजसातयो, भद्रा ऋषयः पितरो गभस्तयः ।
भद्रा भृगवोऽङ्गिरसाः सुदानवो, भद्रागन्धर्वाप्सरस सुदंशसः ॥१७ ॥
भद्रा आपः शुचयो विश्वभृतमा, भद्राः शिवा यक्ष्मनुदो न ओषधीः ।
भद्रा गावः सुरभयो वयोवृधो, भद्रा योषा उषतीर्देव पत्नयः ॥१८ ॥
भद्राणि सामानि सदा भवन्तु नो, भद्रा अथर्वाण ऋचो यजूँषिनः ।
भद्रा नक्षत्राणि शिवानि विश्वः, भद्रा आशा अह्नुताः सन्तुनो हृदि ॥१९ ॥
संवत्सरा न ऋतवो मयो भवो, यो वा आयुवाः सुसराण्युतक्षपाः ।
मुहूर्त्ताः काष्टाः प्रदिशो दिशश्च सदा, भद्रासन्तु द्विपदेशंचतुष्पदे ॥२० ॥
भद्रं पश्येम प्रचरेम भद्रं, भद्रं वदेम श्रृणुयाम भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणोमा महन्ता, मदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्योः ॥२१ ॥

॥इत्यशीति भद्रं शुभम् ॥

(उपर्युक्त भद्र पाठ प्रायः सभी माङ्गलिक कृत्यों में कार्यारम्भ में उच्चारण किये जाते हैं । इन भद्र पाठों में से समय-सुविधानुसार एक, दो या सब सूक्तों का पाठ श्रोता, वाचक तथा यजमान के लिए परम मंगलमय होता है ॥)

॥अथकलशार्चनम्॥

ग्रह मण्डल के पूर्व दिग्भागमें जो अष्टदल लिखा जाता है, (१)उस पर सोने, चान्दी, तांबे अथवा मिट्टी के बने कलश को शुद्ध जल से भरकर स्थापित करें इस कलश के जल से यज्ञ की समाप्ति पर अभिषेक (छींटे) करने से धन-धान्य, आयु, नीरोगता तथा सारी कामनाओं की सिद्धि होती है ॥ तीन बार गायत्री का उच्चारण कर कलश स्थापित करें और निम्नमन्त्रों से कलश की और पुष्प फेंकें। यथाः

ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्॥३॥

(२) अभिनो देवीर्वसा महः शर्मणा नृप पत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्॥१॥
इह इन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोम पीतये॥२॥
महीद्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमीक्षिताम्। पिपृतान्नो म भरीमभिः॥३॥
तयोरिद्घृत्वत्पयो विप्रारिहन्ति धीतिभः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे॥४॥
स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म स प्रथः॥५॥
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या सप्त धामभिः॥६॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥७॥
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥८॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पृशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥९॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥१०॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवासः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥११॥

---

(१) कुम्भं हेममयं कृत्वा रजतं ताम्रमेववा। निर्दोषं मृण्मयं वापि पूर्येन्निर्मलाम्भसा॥ एतेनामृतगर्भेण ब्रह्मणा वन्दितेनचा कलशेन समन्त्रेण यः कुर्यादभिषेचनम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभेत्कामान् सुशोभनान् ॥इतिग्रहशान्तौ॥ (२) ऋग्वेद मं० २, सू० २२, ऋषि-मेधा तिथि कण्वः॥

● पुनः कलश के दक्षिण दिग्भाग में रखे क्षेत्रपालों के पात्रों में निम्नमन्त्रों से अक्षत फेंकें :

[१]द्रष्टेनमः उपद्रष्टे नमः अनुद्रष्टेनमः, ख्यात्रेनमः उपख्यात्रेनमोऽनुख्यात्रेनमः,
शृण्वते नमः उपशृण्वते नमः, सते नमः असते नमः, जातायनमः जनिष्माणाय नमः,
भूताय नमः भविष्यते नमः, चक्षुषे नमः, श्रोत्राय नमः, मनसे नमः, वाचेनमः,
ब्रह्मणे नमः, शान्ताय नमः, तपसे नमः ॥१॥
भूतं, भव्यं भविष्यद् वषट् स्वाहा नमः, ऋक्सामयजुर्वषट् स्वाहा नमः,
गायत्री त्रिष्टुब्जगती वषट् स्वाहा नमः, पृथिव्यन्तरिक्षंद्यौर्वषट् स्वाहा नमः,
अन्नं कृषि वृष्टि र्वषट् स्वाहा नमः, पिता पुत्रः पोत्रो वषट् स्वाहा नमः,
प्राणो व्यानोऽपानो वषट् स्वाहा नमः, भूर्भुवः स्वर्वषट् स्वाहा नमः ॥२॥

● पुनः निम्नमन्त्रों से कलश पर पुष्प प्रक्षेपन करें :

[२]यो विश्वचक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां नमते सम्पतत्रैर्द्यावा पृथ्वी जनयन्देव एकः ॥१॥
ॐ [३]आब्रह्मन्ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी जायता, मस्मिन्राष्ट्रे राजन्य एषव्यः
शूरोमहारथो जायतां, दोग्ध्री धेनुर्वोढानुड्वानाशुः सप्तिर्जिष्णुरथेष्टाः,
पुरन्ध्रिर्योषा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पचयन्तां योग क्षेमो नः कल्पताम् ॥२॥

इषेत्वोर्जेत्वा वायवः स्थोपायवः स्थदेवोवः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे आप्यायध्वमध्रया देवभागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा वः स्तेन ईशत्तमाघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ध्रुवा अस्मिन् गोप्तौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् यजमानस्य पशुपा असि ॥१॥

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे गोषदसि प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टारातिः प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छ मनुनाकृता स्वध्या वितष्टा उर्वन्तरिक्षं वीहीन्द्रस्य परिपूतमसि माधोमोपरि परुस्त ऋद्ध्या समाच्छेता तेमा रिषत् देववर्हिः शतवल्शां विवयं रुहम आदित्या

((१) लौ० ग्र० कां० ३७ सूक्त ४) (२) ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८२ मं० ३ ॥ यजुर्वेद अध्याय २२ मंत्र २२

रास्नासीन्द्राण्याः सन्नहनं पूषाते ग्रन्थिं ग्रन्थातु स ते मास्था दिन्द्रस्यत्वा बाहुभ्यामुद्यच्छे बृहस्पते-स्त्वामूर्ध्ना हरामि देवङ्गमसितदा हरन्ति कवयः पुरस्ताद् देवेभ्यो जुष्टिमह बर्हिरासदे ॥२ ॥ (लौगाक्षी गृह्य० कां० ९ सूक्त ४)

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्त्रधारमयक्ष्मा वा प्रजया संसृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्तिः ॥ मधुमद्घृतवत्पिवतन् वमाना जीवा जीवन्ति रुपवः सदेम मातरिश्वानो धर्मोऽसि द्यौरसि पृथिव्यसि विश्वधायाः परेण धाम्ना हुतासि माह्वाः सा विश्वायुः स विश्व-व्यचाः सा विश्वधायाः हुतस्तोको हुतो द्रप्सोऽग्रये बृहते नाकाय स्वाहा, दृयावा पृथिवीभ्यां सम्पृच्यध्वमृतावरि अर्णिमा मधुमत्तमामान्द्रा धानस्य सातयः, इन्द्रस्त्वा भगं सोमेना तनच्म्यदस्वमसि विष्णवे विष्णो हव्यं रक्ष स्वापो जागृत ॥ (लौ० गृ० कां ९ सूक्त ४)

महितृणामवोऽस्तु द्युम्नं मित्रस्यार्यम्णः दुराधर्षं वरुणस्य ॥१ ॥
नहि तेषाममाचन नाध्वसु वारणेषु इष रिपुरघशंसः ॥२ ॥
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्रजीवस्य मर्त्याय ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्त्रम् ॥३ ॥

(ऋग्वेद २०/१८५ मं० १ तः ३)

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पतिः कक्षीवन्तं च औशिजः ॥१ ॥
यो रैवान्यो अमीवहः वसुवित् पुष्टिवर्धनः सनः सिषक्तु यस्तुरः ॥२ ॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्राणङ्मर्त्यस्य रक्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥३ ॥

(ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १८ मंत्र १-३)

- निम्नोक्त मन्त्रोंसे, प्रणीत पात्र में शुद्ध जल लेकर, उसमें तीन पुष्प डालकर अभिमन्त्रित करें । [१]अन्तर्गर्भ रहित दर्भा के बालिशतभरलम्बे दो दल पवित्र जल से पूर्ण प्रणीत पात्र में डालें :

संव्वः सृजामि हृदयं संसृष्टं मनोऽस्तुवः । सं सृष्टास्तन्वः सन्तु वः,
सं सृष्टः प्राणोऽस्तु वः ॥१ ॥

(छान्दोग परिशिष्टे)

(१) अन्तर्गर्तर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्र चित् ॥

सं व्याव: प्रियास्तन्व: सं प्रिया हृदयानि व:।
आत्मा वोऽस्तु सं प्रिय: सं प्रियास्तनवो मम ॥२ ॥

- निम्न मन्त्रों से कुशपवित्र द्वारा कलश पर जल छिड़क कर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करें :

अग्नेरायुरसि तस्य ते मनुष्या आयुष्कृतस्तेनास्मा अमुष्मा आयुर्धे हि ॥१ ॥
इन्द्रस्य प्राण: स ते प्राणं ददातु यस्य प्राणस्तस्मै ते स्वाहा ॥२ ॥
पितृणां प्राणास्ते प्राणन्ददतु येषां प्राणस्तेभ्यो व: स्वाहा ॥३ ॥
मरुतां प्राणास्ते प्राणन्ददतु येषां प्राणास्तेभ्यो व: स्वाहा ॥४ ॥
विश्वेषां देवानां प्राणास्ते प्राणंददतु येषां प्राणास्तेभ्यो व: स्वाहा ॥५ ॥
प्रजापते: परमेष्ठिन: प्राणस्तौ ते प्राणन्दत्तां ययो: प्राणस्ताभ्यां वां स्वाहा ॥६ ॥
यदऽसर्पस्तत्सर्पिरभवो यन्नवमैस्तन्नवनीतमभवो यदध्रियथास्तद्धृतमभव: ॥७ ॥
घृतस्यधाराऽमृतस्य पन्था मिन्द्रेण दत्तं प्रयतं मरुद्भि:

तत्त्वा विष्णुरन्वपश्यत्तत्तेळ गव्यैरयत् ॥८ ॥
पावमानेनत्वा स्तोमेन गायत्र्या वर्तन्या पाँशोर्वीर्येणोद्धराम्यसौ ॥९ ॥
बृहतात्वा रथन्तरेण त्रिष्टुभा वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येणोत्सृजाम्यसौ ॥१० ॥
अग्रेस्त्वा मात्रया जगत्या वर्तन्या देवस्त्वा सवितोर्नयतु जीवातवे जीवनस्यायासौ ॥११ ॥
देवा आयुष्मन्तस्तेऽस्तेऽमृतेनाऽयुष्मन्तस्तेषामयमायुषाऽयुष्मन्तस्त्वसौ ॥१२ ॥
ब्रह्मायुष्मा त्तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तस्यामयमायुषाऽयुष्मा नस्त्वसौ ॥१३ ॥
अग्निरायुष्मान्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तस्यामयमायुषाऽयुष्मानस्त्वसौ ॥१४ ॥
यज्ञ आयुष्मान्सदक्षिणा भिरायुष्माँस्तस्यामयमायुषाऽयुष्मानस्त्वसौ ॥१५ ॥
सोम आयुष्मान्सओषधिभिरायुष्माँस्तस्यामयमायुषाऽयुष्मानस्त्वसौ ॥१७ ॥
इमम् अग्ने आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो सं शिशाधि।
माते वाऽस्मा अदिते शर्मयच्छ विश्वेदेवाजरदष्टिर्यथाऽसत् ॥१८ ॥

अश्विनोः प्राणस्तौ ते प्राणं दत्तां तेन जीव, मित्रावरुणयोः प्राणस्तौते प्राणन्दत्तां तेन जीव,
बृहस्पते प्राणः स ते प्राणं दत्तां तेन जीव ॥१९॥

- अब निम्न मन्त्रों से मण्डप की प्रत्येक दिशा में दिग्बन्धनार्थ तिल एवं अर्घक्षेपन करें :

आदौ पूर्वे :

ये देवाः पुरः सदोऽग्नि नेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु तेनोऽवन्तु तेभ्यः स्वाहा ॥१॥

दक्षिणेः

ये देवाः दक्षिणात् सदो यमनेत्रा रक्षोहणस्तेनः पान्तु तेनोऽवन्तु तेभ्यः स्वाहा ॥२॥

पश्चिमे :

ये देवाः पश्चात्सदो मरु नेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु तेनोऽवन्तु तेभ्यः स्वाहा ॥३॥

उत्तरे :

ये देवाः उत्तरात्सदो मित्रा वरुणनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यः स्वाहा ॥४॥

आकाशे :

ये देवाः उपरिषदः सोमनेत्रा अवस्वदन्तो रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यः स्वाहा ॥५॥

अग्निकोणे :

इदमहं रक्षोभिः समूहोम्यग्ने सन्दह रक्षासन्दग्धं रक्षोग्नये पुरः सदेरक्षोघ्ने स्वाहा ॥६॥

नैर्ऋतिकोणेः वायवे

यमाय दक्षिणात्सदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥७॥ मरुद्भ्यः पश्चात्सद्भ्यो रक्षोभ्यः स्वाहा ॥८॥

ईशानेः

मित्रावरुणाभ्याम् उत्तरात्सद्भ्यां रक्षोभ्यां स्वाहा ॥९॥
अधः सामायोपरिषदे वस्वदत्ते रक्षोघ्ने स्वाहा ॥१०॥

● निम्न तीन मन्त्रों से दर्भ पवित्र द्वारा द्रव्य शोधनार्थ प्रणीत पात्रस्थ जल को अभिमंत्रित करें :

आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान उर्जेदधातन। महेरणाय चक्षसे ॥१ ॥
यो वः शिव तमो रसस्तस्य भाजयते हनः। उशतीरिव मातरः ॥२ ॥
तस्मा अरङ्गमामिवोयस्य क्षयाय जिन्वथ। आपोजनयथाच नः ॥३ ॥

● इस अभिमंत्रित जलसेनिम्न मन्त्रों द्वारा क्रमपूर्वक दर्भ पवित्रसे यज्ञीय उपकरणों का प्रोक्षण करें। देव अथवा पितरों के लिए दिये जाने वाले पदार्थ बिना प्रोक्षण के उपयोग में नहीं लाने चाहिऐं। जो वस्तुऐं धोने योग्य हों उन्हें देवार्थ तीन बार, मनुष्यार्थ दो बार और पितृ कार्य के लिए एक बार धोकर प्रयोग में लाना चाहिए। प्रोक्षण क्रिया विशेषतः उत्तान हाथ में पवित्र धारण कर के करनी चाहिए ॥

॥आदौ प्रोक्षणमर्घस्य ॥

आप्यायस्व समेतुते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१ ॥

॥पुष्पाणिः ॥

पुष्पवती प्रसुमतिः फलिनीर फला उत। अश्वा इव सजितवरीर्वारुधः पारयिष्णवः ॥२ ॥

॥गन्धम् ॥

गन्धद्वारं दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरी सर्वभूतानां तामिहोपह्वयेश्रियम् ॥३ ॥

॥दर्भा प्रोक्षणम् ॥

कर्मणे वां वनस्पत्यमसि प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टारातिः उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥४ ॥

॥धूपम् ॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वय वयं धूर्वामस्तं च धूर्व।
देवानामसि वह्नितमं सव्रितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥५ ॥

यद्दीयते च देवेभ्यो गन्ध पुष्पादिकं तथा। अर्घपात्रस्थितैस्तोयेरभिपिच्य समुन्सृजेत ॥
यत्रक्षालनयोग्यं तन्त्रिः प्रक्षालनीयं त्रिभिर्देवेभ्यः क्षाल्येत् द्विर्मानुष्येभ्यः सकृत्पितृभ्यः ॥
उत्तानेन हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहतम् ॥ वा० पु० ॥ गोभिलगृह्ये ॥कलिका पुराण ॥

विष्णोः क्रमोऽसि अह्रुतमसि हविर्धानं दृंहस्व माह्वान्मित्रस्य त्वा चक्षुषा
प्रेक्ष उरुत्वा वाताया वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्, रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्,
आदित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत्, विश्वेत्वादेवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन
छन्दसाङ्गिरस्वत्, इन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु, रुद्रस्त्वा धूपयतु, विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥५ ॥ ॥सूर्य की ओर जलक्षेपन ॥
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमग्नं ज्योतिरुत्तमम् ॥६ ॥

॥दीप की ओर ॥

तेजोऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि धामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टं देवयजनं
देवताभ्यस्त्वा देवताभ्यो गृहणमि यज्ञेभ्यस्त्वा यज्ञेभ्यो गृहणमि ॥७ ॥

॥स्वललाटे तिलकम् ॥ आचार्य अपने माथे पर तिलक लगावे ॥

अध्वर्योऽयं यज्ञो अस्तु देवाः ओषधीभ्यः पशुभ्यो मे धनाय विश्वस्मै
भूताय ध्रुवो अस्तु देवाः स पिन्वस्व घृतवद् देव यज्ञः ॥८ ॥

॥आचार्य मस्तक पर अक्षत एवं पुष्प धारण करे ॥

इहैवैधि मापच्योष्टा पर्वता इवा विचाचलित्। इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्टेह यज्ञ मुदाराय ॥९ ॥

॥आसन के रूप में पृथिवी को दोदर्भायें समर्पित करे ॥

ध्रवोद्यौं र्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे। ध्रुव विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विश्वामसि ॥

॥पृथिवी को गन्ध पुष्प भेंट करें ॥

मही द्यौ पृथिवी च न इमे यज्ञं मिमीक्षिताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥

॥आकाश की ओर गन्ध पुष्प फैंके ॥

बळिथा पर्वतानां क्षेत्रं विभर्षि पृथिवि। प्रया भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥

- ग्रहमण्डल के पश्चिम दिग्भाग में लिखित द्वार प्रवेश के पाञ्च कोष्ठों में निम्नलिखित मन्त्रों से द्वार देवताओं को गन्धार्घ पुष्प समर्पित करें :

॥वायुकोणमें महागणपति को ॥

निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहू र्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कमर्घवञ्चित्रमर्च ॥

॥नैर्ऋत कोण में कुमार को ॥

कुमारं माता युवतिः समुब्दं गुहाविभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिमिज्जनासः पुरा पश्यन्ति निहित मारुतौ ॥

॥ईषान कोणमें श्रीः को ॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद प्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीं उपह्वये श्रीर्मां देवी ' जुषताम्॥

॥मध्यकोष्ठ में सरस्वती को ॥

इयं सुष्मेभिर्विसख्वा इवा रुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरुर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वती मा विवासेम धीतिभिः ॥

॥मध्यकोष्ठ में ही लक्ष्मी को ॥

कास्यस्मितां हिरण्य प्राकारां आऽर्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

॥अग्निकोण में विश्वकर्मा को ॥

विश्वकर्मा विश्वदेवो विश्वजिद् विश्वदर्शितः ।
ते त्वा घृतस्य धारया श्रेष्ठ्याय समभूषत ॥

॥पूर्व में अष्टदलयुक्त कलश का ॥

ब्रह्मदेवानां पदवीः कवीनां ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनोग्रध्राणां स्वदितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१ ॥
प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वऽधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२ ॥
यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु ।
यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमोऽस्तुदेवाः ॥३ ॥
अग्निमीळ पुरोहितं यज्ञस्देवमृत्विजम् । होतारं रत्न धातमम् ॥४ ॥
इषे त्वोर्जेत्वा वायवः स्थोपवायवः स्थ देवो वः ।
सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणे ॥५ ॥
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥६ ॥
शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये शंय्यो रभिस्रवन्तु नः ॥७ ॥
अहं पितृन सु विदत्रां अवित्सि न पातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहा गमिष्ठाः ॥८ ॥
वषट् ते विष्णवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वधन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९ ॥

॥स्वेष्टदेव प्रधानानि ॥

- इस स्थल पर यज्ञके प्रधान देवताओं का मन में ध्यान करके उनके अपने-अपने मन्त्र से कलश पर पुष्प चढ़ाये जायें । विवाह संस्कार में अग्नि, पुष्टिपति, प्रजापति आदिस्वेष्ट-देव हैं ॥ **अग्निर्ना रयिमश्न वत्वोषमिव दिवेदिवे । यशसं वीर वत्तमं नमः ॥१ ॥**

प्रजापते नहि त्वदन्य एता विश्वां जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पत्यो रयीणाम् ॥२॥
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षपा उस्त्रा वरिवस्यन्तु देवा नमः ॥३॥
अग्नये नमः, वायवे नमः, सूर्याय नमः, चन्द्रमसे नमः, विष्णवे

प्रायश्चितयाग देवताभ्यो नमः ॥

- ग्रहमण्डल में अङ्कित दश दिक्पालों के कोष्ठकों में एक-एक तथा ग्रहों के कोष्ठकों में दो-दो अखरोट रखकर, गन्ध पुष्पादि से दिक्पालों व ग्रहों की स्थापना निम्नोक्तमन्त्रों से क्रमपूर्वक करें : ॥पूर्व में वज्रचिह्नयुक्त इन्द्र की ॥

इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्मिरिळयामदन्ताम् ॥१॥

॥अग्निकोण-शक्ति चिह्नयुक्त अग्निदेव की ॥

अग्नि सप्ति भाजम्भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्य कर्म निष्ठम्।
अग्नि रोदसि विचरत् समञ्जन् नग्निर्नारीं वीर कुक्षिं पुरन्धिम् ॥२॥

॥दक्षिणमें- दण्डाकारयमकी ॥

यमो दधार पृथिवीं यमो द्यामुत सूर्यम्। यमाय सर्व मित्तस्थे यत्प्राणाद्वायुरक्षिताम् ॥

॥नैर्ऋत कोणमें-खड्गाकारनैर्ऋति की ॥

यं ते देवी नैर्ऋति रावबन्धपाशं ग्रीवा स्वविचर्त्यम्।
तन्ते विषयाभ्यायुषो नु मध्येथा विषितः पित्तमऽधि प्रमुक्तः ॥४॥

॥पश्चिममें- पाशाकार वरुण की ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमऽस्मदऽवाधमं विमध्यं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागासो अदितये स्याम्॥

॥वायुकोण में-ध्वजाकार वायु की ॥

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥

॥उत्तर में-गदाकार कुबेर की ॥

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
साधन्यं वितथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाश तस्मै
राजाधिराजाय प्रसह्यसाधने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्म हे।
स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु,
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय वै नमो नमः॥

॥ईशान कोण-त्रिशूलाकार रुद्र की ॥

ईशानं त्वा शुश्रुमा वयं धनानां धनपते गोमदग्ने
अश्व वद् भूरिपुष्टं हिरण्यवदन् नवद्धे हि मह्यम्।
दुहान्ते द्यौः पृथिवी पयो जगरस्त्वा सोद को विसर्पतु,
प्रजापति नात्मनमाप्रीणे रिक्तो म आत्मा॥
यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु।
यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नोऽस्तु देवाः॥

॥ऊपर की ओर-पद्माकार ब्रह्म की ॥

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः।
सुबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च यानिमसतश्च विवः॥

॥नीचे-चक्राकार विष्णु की ॥

वषट् ते विष्णवा स आकृणोनि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टतयो गिरो मे यूयं पातु स्वस्तिभिः सदा नः ॥

॥कलश के चार कोणों में नागदेवताओं की—यथा ईशाने ॥

नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवियामधि।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

॥अग्निकोणे ॥

येषु वा यातुधाना ये वा वनस्पतीरनु
येऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

॥नैर्ऋति कोणे ॥

ये वाऽधो रोचने दिवोये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येऽप्सु सदांसि चक्रिरे तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

॥वायु कोणे ॥

धन्वनागा धन्वनाजिं जयेम धन्वा तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धंबना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥

- ग्रहमण्डल के भीतरी चतुष्कोण में बने नौ कोष्ठकों में नौ ग्रहों की—यथा

॥मध्ये चक्राकार साग्निसूर्य की ॥१ ॥

अग्निस्तु विश्रवस्तंतु वि ब्रह्माणमुत्तमम्। अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददातु दाशुषे ॥
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमान निवेशयन्नमृतं मर्तयं च।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

॥अग्निकोण में वरुण देवता सहित चक्राकार चन्द्रमा की ॥२ ॥

एवा वन्दस्व वरुणं वृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्।
स नः शर्म त्रिवरुथं वियं सत्पातं नोद्यावा पृथिवी उपस्थे॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन सोम प्रतिहव्या गृभाय॥

॥दक्षिण में सकुमार चतुष्कोणाकार भौम की ॥३ ॥

तं युवां देवावश्विनौ कुमारं सहदेव्यं दीर्घायुषं कृणोतन।
अग्निमूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। रेतां जिन्वति॥

॥ईशाने सविष्णु देवता त्रिकोणाकार बुध की ॥४ ॥

वषट्ते विष्ण आस आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्टहव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पातु स्वस्तिभिः सदानः॥
मघवन वाचमेमां यान्ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्मसाधमादे जुषस्व॥

॥उत्तर में सेन्द्र त्रिकोणाकार बृहस्पति की ॥५ ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहुतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हद् द्युमद्विभाति क्रतु मज्जनेषु।
यद्दीद्यच्छ वसर्त प्रजात तदस्मासु द्रविणं देहि चित्रम्॥

॥पूर्व में सरस्वती सहित चतुष्कोणाकार शुक्र की ॥६ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो आह्वयन्ते सरस्वती दाशुषे वर्यंधात्॥
अन्नात् परिस्त्रतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत्क्षत्रम्।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस्य इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतम्॥

॥पश्चिमे प्रजापति देवता सहित जालाकार शनि की ॥७ ॥

प्रजापति नहि त्वदन्य एता विश्वाजातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
शन्नो देवी रभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्यो रभिस्त्रवन्तुनः॥

॥नैर्ऋति कोण में गणपति सहित यवाकार राहु की ॥८ ॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुंपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम्॥
कयानश्चित्र आभुव दूती सदा वृधः सखा कया सचिष्ठया वृत॥

॥वायुकोणे रुद्रदेव सहित पताकाकार केतु की ॥९ ॥

आवो राजानमध्वरस्य रुद्धं होतारं देव यजं रोदस्योः।
अग्नि पुरातन यित्नूरचिताद्धिरण्य रुपमवसे कृण्वध्वम्॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पशो मर्या अपेशसे समुशद्भिरजायथाः॥

॥ग्रहमण्डलोत्तर दिशा में ब्रह्मदेवतायुत पक्षयाकार ध्रुव की ॥१० ॥

कोऽद्य युक्ते धूरिगा ऋतस्य शिमि, वतो भामिनो दुर्हृनायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य ऐषां भृत्या मृणवत्सजीवात्॥
ध्रवौर्द्यौ र्ध्रुवा पृथिवी र्ध्रुवा सः पवता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजाविशामयम्॥

॥दक्षिण दिशा में अनन्त देवता सहित कुम्भाकार अगस्त्य की ॥११ ॥

आदित्यं गर्भां पयसा समज्जन सहस्त्रस्य प्रतिमां विश्वरुपम्।
परिवृङ्धि हरसामाभि संस्थाः शतयुषं कृणुहि चीयमानः॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छुमानः ॥
उभौ वर्णा वृषिरुग्रः पुपोष सत्य देवेष्वाशिषो जगाम ॥

॥कलश में वास्तोष्पति देवताओं की ॥१२ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारुपाणया विषत्। सख्वा सुशेवए धिनः ॥
वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहि प्रतिन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरा सस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुपस्व ॥
वास्तोष्पते शग्मया शं सदाते सक्षीम हिरण्वयागातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पातु स्वस्तिभिः सदा नः॥

॥क्षेत्रपालों की ॥१३ ॥

क्षेत्रस्यपतिना वयं हितेनेव जयामसि। गामश्वं पोषयित्वा सनो मृळातिदृशे ॥
क्षेत्रस्यपते मधुमन्त भूर्मिन्धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्च्युतं घृतमिव सुपूतममृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥
मधुमतीरोषधीर्द्यावा आपो मधुमान्नो भवन्त्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥

॥कलश में सर्वदेवस्थापनम् ॥१४ ॥

भूतो भूतेषु चरति प्रविष्टः स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनमन्यतामिदम् ॥
उर्वी रोधसी वरिवः कृणोतु क्षेत्रस्य पत्नीरधिवोच तं नः।
तन्मे द्यावा पृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्च तमं हंसः।

यो हवै देवान्साध्यान् वेद सिद्ध्यत्यस्मादेमिवाव लोकाः ॥
देवाः साध्याः सिद्धं ह्यस्यै सिद्धमस्मै सिद्ध
ममुष्यै य एवं वेद सिद्ध्यत्यस्मै ॥
यो विश्व चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो हस्तउत विश्वतस्पात् ।
सम्बा हुभ्यां नमते संयजत्रै र्द्यावा पृथिवी जनयन्देव एकः ॥
यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपो यस्य व्रते पश्वो सन्ति सर्वे ।
यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्ट तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥
गौरिर्मिमाय सलिलानि तक्ष त्येक पदी द्विपदी साचतुष्पदी ।
अष्टपदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥
दिव्यं सुपर्णं वायसं वृहन्तम् अपां गर्भ दर्श तमोषधीनाम् ।
अभिपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो आह्वयन्ते सरस्वती दाशुषे वर्यं धात् ॥
सरस्वत्यमभिनो नेषिवस्यो मापस्फरी पयसः मान आधक् ।
जुषस्वनः संख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥
पावका नः सरस्वती वाजिभि र्वाजिनीवती यज्ञं वष्टुधिया वसुः ।
चोदयत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां यज्ञं वधे सरस्वती ॥
जातवेदस्य सुनवास सोम मरातियतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं रायिपोषणम् ।
उरुवारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
यतो इन्द्र भयावहे ततो नो अभयंकृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्व ऊतभिर्विद्विषो विमृधो जहि ॥
ये देवा दिव्यैकादशस्थ पृथिव्यामध्यैकादशस्थ ।
अप्सुषदोमहिनैका दशस्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥

ससष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज बलिगं रवेण।

बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रद द्धावशती रुदाजत्॥

एवा पित्रे विश्वेदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम मनसा हविर्भिः।

बृहस्पते सुप्रजा वीरयन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

ये के च ज्मा माहिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।

ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्त्रा वरिवस्यन्तुदेवाः॥

रक्षोहणं वाजिनमाजि घर्मि मित्रं प्रथिष्टमुपयामि शर्म।

शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा सरिषा पातुनक्तम्

प्रत्यग्ने हरसा हरः श्रृणीहि विश्वतः प्रति।

यातुधानस्य रक्षसो बलं वीरुज वीर्यम्॥

अन्विदनुमते त्वमन्यासै शं च नस्कृधि।

इषं तो कायनो दधत्प्राण आयूंषि तारिषः॥

यत्ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमतेऽनुमतं सदानु।

तेन त्वं सुमतिर्देव्यस्मै इषं पिन्व विश्ववारां सुवीराम्॥

राकामहं सुहवां सुष्टुतीं हवे श्रृणोतु नः सभगा बोधतुत्मना।
सवीत्वपः सूच्याऽच्छिद्य मानया दधातु वींर शतदायमुक्थम्॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्त्रपोषं सुभगे रराणा॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसिस्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजान्देविदिदिळनः॥
याः सुब्राहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरि। तस्यै विश्वपत्नयै हविः सिनीवाल्यै जुहोतनः॥
या कुह्वर्या सिनीवाली या राकायासरस्वती। इन्द्राणीमह्वऊतये वरुणानीं स्वस्तये॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगा महमश्रवम्।

न ह्यस्या च न जरसामरते पतिर्विश्वस्मादिन्द उत्तरः ॥

नाहमिन्द्राणी शरण सख्युर्वृषा कपेर्ऋते।

यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

कुहूमहं सुकृतं विद्म्यनासमस्मिन्यज्ञे सुहवां जुहुवीमि।

या नो ददाति श्रवणं पितृणां तस्यैते देवि हविषा विधेम ॥
कुहुर्देवा नाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविः श्रृणोतु।
स्वसा देवानां मह्यन्त्यस्मै रायस्पोषं चिकितुषे दधातु ॥
धातादधातु नो रयिमीशा नो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेन वावनत् ॥
प्रजापती रमयतु प्रजा इह धाता दधातु सुमनस्यमानः।
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥

॥ देवाः सुराणाम् ॥

तव श्रिये व्यजहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः।
इन्द्रेण युजः तमसः परिवृतं बृहस्पतिं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥
बृहस्पति अति यदर्यो अर्हद द्युमद्विभाति क्रतु मज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवसर्त प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महोव्रजान्गोमतो देव एषः।
अपः सिषा सन्स्वर प्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्य मित्रमर्कैः ॥

यमो दधार पृथिवीं यमो द्यामुत सूर्यम्।
यमाय सर्वमित्तस्थे यत्प्राणाद्वायुरक्षितम्॥

यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्च दशर्षयः।
यमं यो विद्यात्स ब्रूयाद् यथैकार्षि र्विजानते॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्विरेकमिद् वृहत्।
गायत्री त्रिष्टुप छन्दांसि सर्वास्वास्तायम आहिता॥

मृळानो रुद्रो तनोमयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेमते।
यच्छञ्च योश्च मनुरायेजे पितातदश्याम तवरुद्र प्रणीतिषु॥

अश्यामते सुमतिं देव यज्जययाक्षयद् वीरस्य तव रुद्रमीळः।
सुम्नायन्नऽद्विषो अस्माकमाचारारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधनमकं कविमवसे निह्वयामहे।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे॥

अवते हेळो वरुण नमोभिरक्यज्ञे भिरीमहे हविर्भिः।
क्षयमस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेनांसि शिश्रथाः कृतानि॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्वद वाधमं विमध्यं श्रथाय।
अथा वयमादित्य ब्रते तवानागसो आदि तये स्याम्॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमध्या च मृळाय त्वामवस्युराचके।
तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यमानो हर्विभिः॥

अहेळमानो वरुणेह बोध्यरुशंसमान आयुः प्रमोद षीः॥
ॐ भूर्लोकाय नमः॥ ॐ भुवोर्लोकाय नमः॥ ॐ स्वर्लोकाय नमः॥
ॐ भूर्भुवः स्वर्लोकाय नमो नमः॥

अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याः अयं अपां रेतांसि जिन्वति ॥
उमा वामिन्द्राग्नि आहुवध्या उभा राधसः सहमादयध्यै।
उभादातारायिषां रयीणामुभावाजस्य सातये हुवेवाम् ॥
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्ववीडवः।
यम प्लवानो भृगवो तिररुचुर्वनेषु चित्रं विभुं विशे विशे ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियोयतो जात अरोचथः। ते जानन्नग्न आरोह ततोनोवर्धया रयिम् ॥
उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते ॥
अस्य प्रत्ना मनुद्युतं शुक्रं दुदुहे अह्रया पयः सहस्रामृषिम् ॥
कदाचनस्तरीरसिनेन्द्र सश्चसि दाशुषो। उषो पेन्नु मघवन्भूय इन्नुतेदानं देवस्य पृच्यते।
परिते दूळभो रथोऽस्मा अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षांसि दाशुषः ॥
यौ तेश्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षि नृचक्षसो।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्स्वस्ति चास्मा अनमीवंचधेहि ॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्यनामानि तत्र हव्यानि गन्तय ॥
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कर्मज्ञातयक्ष्मा दूतराजयक्ष्यमात् ॥
ग्राहि जंग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नि प्रमुमुक्तमेनम् ॥
अङ्ग दङ्गाल्लोम्नो लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिमं विवृधामिते ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॥३ ॥
ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुराततम् ॥

(१) मार्गशीर्षे : रुक्मिणी सहिताय कृष्णाय, श्रीस० केशवाया पौषे : प्रिया स० अनन्ताय, वागीश्वरी स० नारायणाय। माघे : प्रीति सहिताय अच्युताय, कान्ता स० माधवाय। फाल्गुने : शक्तिसहिताय चक्रिणे, क्रिया स० गोविन्दाय। चैत्रे: सिद्धि स० वैकुण्ठाय, मति सहि० विष्णवे। वैशाखे : शोभा सहिताय जनार्दनाय, विभूति सहि० मधुसूदनाय।

ऐन्द्रग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वेदेवा नाति विध्यन्ति शूराः ।
तन्नस्त्रायतां तत्वः सर्वतो महदा युष्मन्तो जरामुपगच्छेम जीवाः ॥

● उक्त क्रियाके पश्चात् एक पात्र में दही और मधु मिलाकर 'सावित्राणि' मन्त्र से पूर्वार्चित् देव समुदाय का नाम लेकर मधुपर्क भेंट करें । यथाः

सावित्राणि सावित्रस्य देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः । प्रजापतये, ब्रह्मणे-कलशदेवताभ्यः । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरदेवताभ्यः । चतुर्वेदेश्वराय, [(२) ऋतुपतये नारायणाय], दुर्गायै, त्र्यम्बकाय, वरुणाय, यज्ञपुरुषाय । अग्निष्वातादिभ्यः, पितृगणदेवताभ्यः । अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय विवाहोद्वाह-देवताभ्यः । मेषादिभ्यो द्वादशलग्नेभ्यः । अश्विन्यादिभ्यः सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः । भगवते वासुदेवाय, सङ्कर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, सत्याय, पुरुषाय, अच्युताय, माधवाय, गोविन्दाय, सहस्रनाम्ने विष्णवे, लक्ष्मी सहिताय नारायणाय । भवायदेवाय, शर्वायदेवाय, रुद्रायदेवाय, पशुपतयेदेवाय, उग्रायदेवाय, भीमायदेवाय, महादेवाय, ईशानादेवाय, ईश्वरायदेवाय, उमासहिताय शिवाय, पार्वती सहिताय परमेश्वराय । विनायकाय, एकदन्ताय, कृष्ण पिङ्गलाय, गजाननाय, लम्बोदराय, भालचन्द्राय, आखुरथाय, विघ्नेशाय, विघ्नभक्षाय, वल्लभा सहिताय श्री महागणेशाय । क्लीङ्कां कुमाराय, मयूरवाहनाय, सेनाधिपतये कुमाराय । भगवते ह्रां ह्रीं सः सूर्याय, सप्ताश्वाय, अनश्वाय, एकाश्वाय, नीलाश्वाय, प्रत्यक्षदेवाय, परमार्थसाराय, तेजोरुपाय, प्रभा सहिताय आदित्याय । भगवत्यै अमायै, कामायै, टङ्कधारिण्यै, तारायै, पार्ववत्यै, यक्षिण्यै, श्री शारिका भगवत्यै, श्री शारदा भ०, श्री महाराज्ञी भ० श्री ज्वाला भ०, श्री ब्रीडा भ०, श्री वैखरी भ०, वितस्ता भ०, गङ्गा भ०, युमना भ०, कालिका भ०, सिद्धलक्ष्म्यै, महालक्ष्म्यै, महात्रिपुर-सुन्दर्यै, सहस्रनाम्न्यै देव्यै भवान्यै, अभयङ्करी देव्यै, क्षेमङ्करी भवान्यै, सर्व शत्रु घातिन्यै, इहराष्ट्राधिपतये । विष्णु पञ्चायतन देवताभ्यः । इन्द्राय, अग्नये, यमाय, नैर्ऋतये, वरुणाय, बायवे, कुबेराय, ईशानाय, ब्रह्मणे, विष्णवेदशदिक्पालेभ्यः ।

अनन्तादिभ्योऽष्टाभ्यो नागदेवताभ्यः । अग्न्यादित्याभ्यां, वरुणचन्द्रमाभ्यां, कुमार भौमाभ्यां, बिष्णु बुधाभ्यां, इन्द्रबृहस्पतिभ्यां, सरस्वती-शुक्राभ्यां, प्रजापति शनैश्चराभ्यां, गणपति राहुभ्यां, रुद्रकेतुभ्यां, ब्रह्मध्रुवाभ्यां, अनन्तागस्त्याभ्याम् । ब्रह्मणे, कूर्माय, ध्रुवाय, अनन्ताय, हरये, लक्ष्म्यै, कमलायै, शिख्यादिभ्यः पञ्चचत्वारिशद्वास्तोषपतियाग-देवताभ्यः । गौर्यादि मातृभ्यः । ललितादिभ्यो मातृभ्यः । दुर्गा क्षेत्र गणेश्वर देवताभ्यः, राकादेवताभ्यः, त्रिकादेवताभ्यः, सिनीवाली दे०, यामी दे०, कुहू दे०, रौद्री दे०, ऐन्द्री दे०, बार्हस्पत्य दे० ॐ भूर्देवताभ्यः, ॐ भुवर्दे०, ॐ स्वर्दे०

श्रावणे : कान्ति स० वासुदेवाय, रति स० श्री धराय । **भाद्रपदे:** लक्ष्मी स० यज्ञपुरुषाय, धृति स० वामनाय । **आपाढ़े :** महिमा स० उपेन्द्राय, इच्छा स० त्रिविक्रमाय । **ज्येष्ठे :** प्रकाम्य स० योगीश्वराय, धी स० पद्मनाभाय । **कार्तिके :** लघिमा स० पुण्डरीकाक्षाय, गरिमा स० दामोदराय । **आश्विने :** प्राप्ति स० हरये, माया स० ऋषिकेशाय । सत्यभामा सहिताय नरकारिये, निष्कला सहिताय मार्तण्डाय ॥
मलिम्लुचे-मलमासे : शक्ति सहिताय योगीश्वराय,

ॐ भूर्भुवः स्वर्देवताभ्यः, अखण्ड ब्रह्माण्ड देवताभ्यः, धूर्म्यः, उपधूर्म्यः, महागायत्र्यै, सावित्र्यै, सरस्वत्यै, हेरुकादिभ्यो, वटुकादिभ्यः, क्षेत्रेशदेवताभ्यस्तिलतण्डुल मात्रं दधिमधुमिश्रं नमो नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥ इसके पश्चात् निम्नोक्त वेदमन्त्रों से ईश प्रार्थना करें :

हिरण्यगर्भः समवर्त्ताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुत्तेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥१॥
यः प्राणतो निमिषतश्च राजापतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।
ईश्यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥२॥
य ओजदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी दृढा येन सुस्तम्भितं येन नाकम् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
य इमे द्यावा पृथिवी तस्तभाने यद् रोधसी रेजमाने ।
यस्मिन्नधि विनतः सुर ऐति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥
यस्येमे विश्वे गिरियो महित्वा समुद्रं यस्य सहाऽहुः ।
दिशो यस्य प्रदिशा पञ्चदैवी कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
आपोह यन महती र्विश्वमायु गर्भं दधाना जयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां निवर्वताऽसुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥
आनः प्रजान् जन्यतु प्रजापति र्धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो, मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥८॥

नोट : इन उपर्युक्त यजुर्वेदोद्धृत मन्त्रों का अर्थ १३८ तः १४० पृष्ठों पर देखें ।

॥ द्वारदेवता पूजनम् ॥

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समि धीमहि अग्ने अर्चत ऊतये अर्चत।
प्रार्चत प्रिय मे धासो अर्चत अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्णुमर्चत ॥९ ॥

- ॥वरागमन से पूर्व ही आचार्य देव उक्तसारी क्रिया यथा विधि पूर्ण करले ॥

॥इति देवस्थापन-देवार्चनं च ॥

॥अथ द्वारदेवता पूजनम् ॥

- वर के आने पर घर के मुख्य द्वार पर वर तथा यजमान को लाकर, आचार्य उन के द्वारा द्वार-देवताओं की पूजा करावे । पूजा से पूर्व शुभकार्य के निर्विघ्न सम्पन्नार्थ विष्णु तथा गणेश की वन्दना करे । यथा :

शुक्लाम्बर धरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ॥१ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थोजनार्दनः ॥२ ॥

विभृद दक्षिणहस्त पद्म युगले दन्ताक्ष सूत्रे शुभे,
वामे मोदक-पूर्ण पात्र परशु नागोपवीती त्रिदृक।
श्रीमान् सिंहयुग्मासनाश्रित युगे शंख्वौ वहन् मौलिमान्,
दिशादीश्वर पत्र एश भगवाँ ल्लम्बोदर शर्म्मणः ॥३ ॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च, कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो, विघ्ननाशो विनायकः ॥४॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो, भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानिनामानि, गणेशस्य महात्मनः ॥५॥
विद्यारम्भे विवाहे च, प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव, विघ्नस्तस्य न जायते ॥६॥
अभिप्रेतार्थ सिद्ध्यर्थं, पूजितो यः सुरैरपि।
सर्व विघ्नहरेत्तस्मै, गणाधिपतये नमः ॥७॥

॥अथ कायशोधनम्॥

- वर तथा यजमान प्रणीत पात्रस्थ जल दो दर्भाओं से निम्न मन्त्रोच्चारण कर शरीर पर छिड़कें :

तीर्थे स्नेंय तीर्थमेव समानानाम्भवतिमानः।
शंशो अरुरुषो धूर्तिः प्राणङ्मर्त्यस्य रक्षाणो ब्रहणस्पते

॥पवित्र धारणम्॥

वसोः पवित्रम ऽसि शतधारं वसूनां पवित्रमऽसि सहस्त्रधारम्।
अयक्ष्मा वः प्रजया संसृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः॥

- उक्त मन्त्र से वर तथा यजमान अपने दक्षिण हाथ की अनामिका अङ्गुली में कुश पवित्र धारण करें। [१]पवित्र चार, तीन अथवा दो ही कुशाओं से बनाना चाहिए, उन कुश पत्रों को बाँयीं ओर से दाँयीं तरफ लपेट कर ब्रह्मग्रंथी से बान्धने पर पवित्र बनता है। पवित्र धारण करना सब याज्ञिक कृत्यों तथा सन्ध्या वन्दनादि में प्रशस्त एवं अनिवार्य माना गया है। पवित्र अनामिका अंगुली के प्रथम और द्वितीय पर्व के मध्य धारण करना चाहिए।

(१) चतुर्भिः कुशपत्रेश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामथापि वा। पवित्रं कार्येत् नित्यं प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥(की० पु०)

॥स्वात्म पूजनम् ॥

- निम्न मन्त्रसे वर एवं यजमान अपने-अपने मस्तक पर तिलक तथा सिर पर अर्घपुष्प धारण करें ।

ॐ परमात्मने पुरुषोत्तमाय पञ्चभूतात्मकाय विश्वात्मने मन्त्रनाथाय आत्मने नारायणाय आधार शक्तयै समालमनं गन्धो नमः ॥(गन्धलेपं निवर्यित्) एवं अर्घो नमः पुष्पं नमः ॥

॥अथ दीपम् ॥

सुप्रकाशो महादीपः, सर्व तिमिर नाशकः ।
प्रसीद मम गोविन्द, दीपोऽयं परिकल्पितः ॥

- उपरोक्त मन्त्र से विष्णु का ध्यान करके दीपक को नमस्कार करें । (१)यहां प्रायः इस बात का ध्यान रखा जावे कि दीपक किसी पीठ विशेष पर रखना चाहिए, पृथिवी पर रखना उचित नहीं । साथ ही दीपक में घी या तेल डालना चाहिए । दोनों मिलाकर कभी नहीं डाले ।

॥अथ धूपदानम् ॥ (धूप को नमस्कार करें)

वनस्पति रसो दिव्यो, गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आह्वानं सर्व देवानां, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

॥सूर्य देव पूजनम् ॥ (सूर्य को नमस्कार)

- अर्घपुष्पादिसे सूर्य का पूजन करें । (२)देवपूजा प्रकरणमें प्रत्येक समय पर प्रारम्भिक पूजा सूर्य देव की ही करनी चाहिए । ऐसा ही शास्त्र का कथन है और जो सर्वथा वैज्ञानिक है ।

---

(१) सर्वसहावसुमती सहतेनत्विदं द्वयम् । अकार्य घातं च दीपतापं तथैव च ॥ न मिश्री कृत्य दद्यातु दीपे स्नेह घृतादिकान् । दत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तामिस्रं नरकंभवेत् ॥ का० पु० ॥ (२) यथा देवमयत्वच्च तरर्णिर्लोक पूजितः । तथा धूपोपहारैश्च पूज्येत् प्रथमं रविम् ॥ अपूज्य प्रथमं सूर्य, अपरान्यः प्रपूजयेत् । न तद्भूतकृतं पाद्यं समप्रतीक्षान्ति देवताः ॥ **॥स्कन्ध पुराणतः ॥**

नमो धर्म निधानाय, नमः सुकृति साक्षिणे।
नमः प्रत्यक्ष देवाय, भास्कराय नमो नमः ॥

॥अथ धूपदीप सङ्कल्पः ॥

● निम्नमन्त्र से द्वार देवताओं के लिए प्रणीत पात्र में जल लेकर धूपदीप संङ्कल्प करें : यथा—

यत्रास्ति माता न पिता न बन्धु, र्भ्रातापि नो यत्र सुहृज्जनश्च।
न ज्ञायते यत्र दिनं न रात्रि, स्तत्रापि दीपं शरणं प्रपद्ये।

ॐ तत्सदद्यतावत् मासोत्तमेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे द्वारदेवताभ्यः, धर्मायाऽधर्माय देहिल्यै, खिङ्किन्यै मेरु प्राकार देवताभ्यः(वरकहे) आत्मोद्वाह निमित्तं (यजमानकहे) कन्योद्वाह निमितं (दोनों कहे) धूपदीप सङ्कल्पात् सिद्धिरस्तु धूपो नमः दीपं नमः ॥

● यहां 'अमुक' के स्थान पर मास, पक्ष, तिथि, वार का नाम लेना चाहिए।

'शन्नोदेवीरित्यापोऽभिमन्त्रयेत'

भाषा : 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र से प्रणीत पात्र में शुद्ध जल लेकर उसे दो दर्भाओं के विष्टार से अभिमन्त्रित करें। यथाः

ॐ शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्रवन्तु नः ॥

'सं० वः सृजामीतिद्वाभ्यां त्रिपुष्पाणिक्षिपेत्'

भाषा : 'संव्वः सृजामि' आदि मन्त्र द्वय से अभिमंत्रितजल में तीन पुष्प डालें।

सव्वः सृजामि हृदयं, संसृष्टं मनो अस्तु वः।
संसृष्टास्तन्वः सन्तु वः, संसृष्टाः प्राणः अस्तु वः ॥१ ॥

संय्याव: प्रियास्तन्व: सं प्रिया हृदयानि व: ।
आत्मा वो अस्तु सं प्रिय: संप्रियास्तन्वो मम ॥२ ॥

- जीवाधानम्: निम्नमन्त्रसे अभिमंत्रित जल विष्टर से छिड़क कर द्वार देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा करें : अश्विनोः प्राणस्तौते प्राणं दत्तां तेन जीव, मित्रावरुणयोः प्राणस्तवते प्राणन्दत्तां तेन जीव, बृहस्पतेः प्राणः स ते प्राणं ददातु तेन जीव ।

॥अथ पृच्छा ॥

- **पृच्छा का अर्थ है अगले कार्यक्रम के लिए प्रश्न उपस्थित करना । पूजा प्रकरण में सब से पूर्व पृच्छा का ही सम्पादन किया जाता है । पृच्छा और आसन प्रदान में षष्ठी,** [१]अर्ध्यदान में प्रथमा, आवाहन में द्वितीया और शेष कर्म में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग देव समुदाय के नामों के साथ करना चाहिए । वर तथा यजमान यव, तिल और सरसों हाथ में लेकर तीन बार गायत्री मन्त्र का उच्चारण करकें पृच्छा कृत्य करें । यथाः **ॐ गायत्र्यै नम:, ॐ भूर्भुव: स्व:, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो योन: प्रचोदयात् ॥३ ॥ ॐ तत्सदद्यतावत् मासोत्तमेऽमुकमासेऽमुकपक्षे अमुक तिथौऽमुकवासरे महागणपते:, कुमारस्य, श्रिय:, सरस्वत्या:, लक्ष्म्या:, विश्वकर्मण: द्वारदेवतानां, धर्मस्याऽधर्मस्य, देहिल्या:, खिङ्खिन्या:, मेरु प्राकर देवतानां** (वरकहे) **आत्मोद्वाह निमितं** (यजमान कहे) कन्योद्वाहिनिमितं (दोनों अलग-अलग कहें) **द्वार देवता पूजनमर्चामऽहं करिष्ये ।** (आचार्य कहे) **ॐकुरुष्व ॥ यवान्विकीर्य:** (हाथ में रखे यव के दानों को वर० यजमान इधर उधर फेंकें) इसके बाद द्वार देवताओं को यथाक्रम एक-एक दर्भाङ्कुर आसन रूपमें भेंट करें । यथाः वायवे **(पश्चिमोत्तर कोणमें)** महागणपतेः, नैर्ऋते **(दक्षिण पश्चिमकोण में)** कुमारस्य ईशाने **(पूर्वोत्तरकोण में)** श्रियाः, मध्ये **(बीचमें)** सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, अग्निकोणे (दक्षिणपूर्वकोण में) **विश्वकर्मण:,** ऊपरि (ऊपर की ओर) **धर्मस्य,** अधः (नीचे की ओर) **अधर्मस्य,** दक्षिणे **(दक्षिणमें)** देहिल्याः, उत्तरे **(उत्तरमें)** खिङ्खिन्याः मेरु प्राकार देवतानामिदंमासनं नमः ॥

- **पुन: वर और यजमान यव के कुछ दाने हाथ में लेकर :**

महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे द्वार देवताभ्य:

---

(१) पृच्छायामसने षष्ठी प्रथमाऽर्घ्य निवेदने द्वितीयाऽऽवाहने चैव चतुर्थी शेष कर्मणि ॥ (कर्मकाण्ड तः)

(दोनों पृथक-पृथक कहें) युष्मान् पूजयामि ॥ **(आचार्यकहे)** ॐ पूजय ॥

- पुनः यव के दाने हाथ में रखे हुए ही : महागणपितं, कुमारं, श्रियं, सरस्वतीं, लक्ष्मीं, विश्वकर्मणं— द्वारदेवताः, धर्मं, अधर्मं, देहिलीं, खिंखिनीं-मेरु प्राकार देवताः (वर-यजमान अलग कहें) आवाहयिष्यामि। (आचार्य कहे) ओ३म् आवाहय ॥ (हाथ में रखे यव के दाने इधर उधर फैंकें) पुनः वर को सम्बोधित कर :

(यजमान कहे) स्वागतं भोः। **(प्रत्युत्तर में वर कहे)** सुस्वागतम् ॥

- इसके पश्चात् पाद्यार्थ प्रणीतपात्र में जल लेकर आचार्य निम्न मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे :

शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये, शँय्योरभिस्त्रवन्तु नः ॥

॥अथ पाद्यार्थ—पाद्यद्रव्याणि ॥

लाजाश्च कुङ्कुमं चैव, सर्वौषधि समन्वितम्।
दर्भाङ्कुरे जलं चैव, पञ्चाङ्गं पाद्य लक्षणम् ॥

भाषा : लाजायें, केसर, [१]सर्वौषधि, दर्भदल तथा शुद्ध जल— इन द्रव्यों से युक्त पाद्य होता है।

- उक्त पाद्य द्रव्यों को अभिमंत्रित जल में मिलाकर दर्भाओं से द्वार देवताओं को पाद्यार्पण करें। यथाः महागणपतये, कुमाराय, श्रिये, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः, धर्मायाऽधर्माय, देहिल्यै, खिंखिन्यै-मेरु प्राकार देवताभ्यः पाद्यं नमः ॥

(पाद्यशेषं निवार्येत्—पाद्यार्पण के बाद शेष जल कहीं स्वच्छ स्थान में फेंक दें)

(१) सर्वौषधि : मुरामांसी वचा कुष्ठं, शैलेयं रजनी द्वयम्।
सठी चम्पक मुस्ता च, सर्वौषधिः गणः स्मृतः ॥ मुरा, जटामासी, वच, कुठ, शिलाजीत, दारुहल्दी, सटी (कचूर), चम्पा तथा नागर मोथा ॥

● पुनः प्रणीत पात्र में शुद्ध जल लेकर अर्घ्य दानार्थ अभिमंत्रित करें । यथाः

शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये । शँय्योरभिस्त्रवन्तुनः ॥

॥अर्घ्य द्रव्याणिः ॥

आपः क्षीरं कुशाग्राणि, घृतं च दधितण्डुलः ।
यवा सिद्धर्यर्थकाश्चैव, ह्यर्ध्यमष्टाङ्गमुच्यते ॥

भाषा : जल, दूध, कुशा, घृत, दही, चावल और जौ— ये द्रव्य अर्घ्य के अङ्ग हैं ॥

● **उक्त द्रव्यों को अभिमन्त्रित जल में मिलाकर द्वारदेवताओं को अर्ध्यार्पण करें** ॥ यथाः महागणपते, कुमार, श्रीः सरस्वती, लक्ष्मीः, विश्वकर्मन्-द्वारदेवताः, धर्माधर्म, देहली खिंखिनी मेरु प्राकार देवताः इदमोऽर्घ्यं नमः ॥

॥अथ गन्धम्— फिर तिलक चढ़ावें ॥

यथाः महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः, धर्मायाधर्माय, देहिल्यै, खिंखिन्यै-मेरु प्राकार देवताभ्यः समालभनं गन्धं नमः ॥

गन्धलेपं निवार्येत् । एवं अर्घो नमः पुष्पं नमः, धूपं नमः, दीपं नमः ॥

● इस प्रकार अर्घ्र, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन एवं दक्षिणा आदि पृथक-पृथक द्वार देवताओं को भेंट करें ॥ इस पूर्वोक्त क्रिया का सम्पादन कर वर और यजमान अपने-अपने हाथ में जल एवं यव के दाने लेकर आगे की क्रिया सम्पन्न करें । यथाः **ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३ ॥ महागणपते, कुमारस्य, श्रियः, सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, विश्वकर्मणः द्वारदेवतानां, धर्मस्या धर्मस्य, देहिल्याः, खिंखिन्याः - मेरु प्राकार देवतानां** (वर कहे) **आत्मोद्वाह निमितं** (यजमान कहे) **कन्योद्वाह निमितं** (दोनों कहे) **द्वारदेवतानां पूजनमच्छिदं सम्पूणमऽस्तु** ॥ (आचार्य कहे) **एवमस्तु ॥ यवोदकं नमः, उदकतर्पणं नमः ॥**

● ये शब्द कहकर अपने हाथों में रखा हुआ जौ और जल पृथिवी पर छोड़ दें ॥

अथान्ते नमस्कारम्

आपन्नोस्मि शरण्योसि सर्वावस्थासु सर्वदा ॥
भगवाँस्त्वां प्रपन्नोस्मि रक्षमांशरणागतम् ॥

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां, शिरसा, उरुसा, मनसा, वचसा, कर्मणा च साष्टाङ्ग नमस्कारं करोमि नमः ॥ उपर्युक्त वाक्यों से अन्त में द्वार देवताओं को नमस्कार करके, वर को यजमान सादर यज्ञ मण्डप में ले आवे ॥

॥समाप्तोऽयं द्वारदेवता पूजन प्रकरणम् ॥
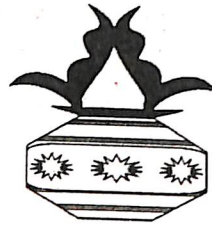
॥अथ रक्षोघ्नमन्त्राः ॥

- **'अग्निशरवेतिलहोमः'**—यज्ञमण्डप में यथोचित् स्थान पर वर के बैठ जाने पर आचार्य एक शराव में (थाली अथवा कम गहरे पात्र में) अग्नि को अपने सम्मुख करवा कर रक्षोघ्न मन्त्रों से विघ्न प्रशमनार्थ तिल तथा सरसों का होम करे ॥

अच्छिन्नो दैव्यस्तन्तुर्मा मानुष्यच्छिदिनिप्रदोऽसी
दामहं तन्निमृणामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
विभूरस्यऽप्रहतं भूयासं योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।
प्रभूरस्यऽबृहन्तमति भूयासं योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

पूषा मा प्रपथे पातु, पूषा मा पशुपाः पातु, पूषा माऽधिपति पातु ॥
प्राचीदिगाग्निर्देवताऽग्निं सऋच्छतु, यो मैतस्यादिशोऽभिदासति ॥
दक्षिणादिगिन्द्रो देवतेन्द्रं स ऋच्छतु, यो मैतस्या दिशोऽभिदासति ॥
प्रतीची दिक्सोमो देवतासोमं स ऋच्छतु, यो मैतस्यादिशोऽभिदासति ॥
उदीची दिक्मित्रावरुणौदेवता मित्रावरुणौस ऋच्छतु, यो मैतस्यादिशोऽभिदासति ॥
ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिर्देवा बृहस्पतिं स ऋच्छतु, यो मैतस्यादिशोऽभिदासति ॥
इन्दिगऽदितिर्देवाऽदितं स ऋच्छतु, यो मैतस्यादिशोऽभिदासति ॥
ज्योतिषे तन्तव आशिष्यामाशास्ते साऽनुमातन्,
इष्टुर्वा ब्रह्माणि प्रजापतेरग्निर्विष्णवे ।
अग्नये पथिकृतेऽष्टकपालं निर्वपेदस्याः, पौर्णमासीवाऽमावस्यावाऽतिपद्यते ॥
बर्हिष्पथं वा एष एति यस्याः, पौर्णमासीवाऽमावस्यावाऽति पद्यते ॥
अग्निर्देवानां पथिकृतमेवान्वारभते, स एनं पंथामपि नयति विवा एतद्यज्ञं

छिनति, यद्यज्ञे प्रतत एतां अन्तेरष्टिर्निर्वपति, य एवा सा अग्नयोऽष्टकपालः,
पौर्णमासेयोमावस्यां तमग्नये पथिकृते, कूर्यात्तेनैव पुनः पन्थामे वैतिन यज्ञं,
विच्छिन्नत्यग्नये वाजसृतेऽष्टकपालं निर्वपेत् ॥

सङ्ग्रामेऽग्निर्वैदेवानां वाजसृद्वाजमेष धावति,
य: संग्रामं जयति तमेव भागधेयेनोपधावति,
वाजमेव धावति जयति संग्राममथो अग्निरेव,
न प्रति धृषे भवत्यग्नये व्रतपतयेऽष्टकपालं निर्वपेत्,
य अहिताग्निः सन्न व्रतं चरेदाऽनीतो वा ऐष देवानां,
य अहिताग्निरदत्यस्यान्नं व्रतपतिमेतस्य व्रतं गच्छति,
य अहिताग्निः सन्नव्रतं चरत्यग्निर्देवानां व्रतपतिस्तमेव,
भागधेयेनोपधावति, व्रतपतिरेवाधिव्रतमा-
लभतेऽग्नये रक्षोघ्नेऽष्टाकपालं निर्वपेत् ॥
आमयावीन्द्रं वैजातं रक्षास्यऽस्य सचन्त स अदीयमानो,
रक्षोभिः समृषमानोऽग्निं प्राविशत् तस्मादग्नि रक्षांयस्याऽस्य पाहन् रक्षास्येतं सचन्ते, य आमया व्यऽग्निर्देवानां रक्षोहा,
तमेवभाग धेयोपधावति, सोऽस्मान् रक्षांस्यपहन्त्यऽमावस्यां रात्रीं,
निशिजयतोऽमावस्यां रात्रीं, निशि रक्षांसि प्रेरते पूर्णान्येवै नान्यवपति
परिश्रिते यजेत रक्षसामऽन्तर्हित्यै ॥
वामोदेवस्यैतत्पञ्चदशं रक्षोघ्नं सामिधेन्यो भवति,
वामदेवश्चैव कुसिदायी चात्मनो राजिमयां तांतस्य-
कुसीदायी, पूर्वस्यातिद्रुतस्य कुभारण्यमृणात्सा द्वितीया-
मुपर्यावर्तत्, तेषां वार्क्षं वा छेत्स्यामीति सवामदेव,
उख्यमग्निमभिभरुस्तमेवैक्षत्, स एत त्सूक्तमश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसिति,
न पृथ्वी मितितामग्निरनुद्रुत्य समदहत्सा दह्यमाना,
हृदं कौसिदं प्रामञ्चद्यदेतदनूच्यते रक्षसां दुष्टयै ॥

(कृणुष्व पञ्चोनारक्षोघ्नं वामदेवस्य गौतमपुत्रस्य)

कृणुष्व पाजः प्रसितिर्न पृथ्वीं या हि राजे वामो इमेन।
तृष्वीमनु प्रसितिद्रोणानोस्थासि विध्य रक्षस्तपिष्टैः॥

तव भ्रमाम आशुया पतन्त्यनुस्पृश्य धृषता शोशुचानः।
तं पूष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दतो विसृज विश्व गुल्काः॥

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवापयोर्विशो अस्या अदब्धः।
यो नो दूरे अधशंसो यो अन्त्यग्नेमा किष्टे व्यधिराधदर्षीत्॥

उदग्ने तिष्ठन्प्रत्यातनुष्वन्यमित्राँ ओषात्तिग्महेते।
यो नो अरातिं समिधानचक्रे नीचास्तं ध्यक्षतमन्नशुष्कम्॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याद्य स्मादविष्कृणुष्व देव्यान्यग्निः।
अवस्थिरा तनूहि या तु जूनां जामिभजामिं प्रमृणीहिशत्रून्॥

स तेजानाति सुमतिं यविष्ट य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो विदुरो अभिद्यौत्॥

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषाय उक्थै।
पि प्रीपति स्वआयुषे दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना स सदिष्टः॥

अर्चामिते सुमति घोष्यर्वाक् सन्ते वावाता जरतामियङ्गीः।
स्वश्वस्त्वा सुरथा मार्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यन्॥

इहत्वा भूर्याचरेदुपत्सान्दोषा वस्तुर्दीदिवांसमनुद्यून्।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभिद्युम्ना तस्थिवांसोजनानाम्॥

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्ने उपयाति वसुमता रथेन।

तस्य त्राता भवतितस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥
महोरुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मापि तुर्गो तमादान्वियाय ।
त्वन्नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यतिष्ट सुकृतोदमूना: ॥
अस्वप्रजास्तरण्य: सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठ: ।
ते पायव: सध्यूञ्चो निषद्याग्ने तव न: पान्त्वमूर ॥
ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरिताद रक्षत् ।
ररक्षवान्सुकृतोर्विश्ववेदादिप्सन्त इन्द्रिमवोनाहदेभु: ॥
त्वया वयं स धन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्य श्याम वाजन् ।
उभा शंसा सूदया सत्यता तेनऽनुष्टया कृणुह्यह्रियाण: ॥
अयाते अग्रे समिधा विधेम प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशंसो रक्षस: पाह्यस्मान्द्रुहोनिधोमित्रमहो अवद्यात् ॥
(उदस्थाद्धनजित्यहोरौशनस्य् ब्रह्मजज्ञानमिति स्वयंभुवो ब्रह्मणा:
ऐन्द्राग्निमिति वायुवोरार्षम्) यथा—
उदस्थाद्धन जिद्गोजिदश्वजिद्धिरण्यजित्सूनृत्या परिवृत: ।
एतच्चकेण सविता रथेनोर्जाभागं पृथिवीमेत्यापृणन ॥
सं वरत्रान्धातन निराहावं कृणोतन ।
सिञ्चामहा अवतं वयमुद्रिणं विश्वाहादस्तमक्षितम् ॥
- ब्रह्मज ज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमत: सुरुचो वे न आव: ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठा: सतश्चयोनिमसतश्चविव: ॥
अनाप्त्यायाव: प्रथमा यस्यां कर्माणि कुर्वते ।
वीरान्नो अत्रमादभन् तद्व: एतत् पुरोदधे ॥

पूर्यूषू प्रधन्व वाजसातये परिवृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥

सहस्त्रधारेऽवते समस्वरन्दिवो नाके मधु जिह्वा असश्चतः ।
तस्यस्पृशो न निमिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥

मलिम्लुचो नामाऽसि त्र्योदशमासः इन्द्रस्य शर्मा सीन्द्रस्य वर्मा सीन्द्रस्य वरूथमसि ।

तंत्वा प्रपद्ये सगोः साश्वः सपुरुषः सहयन्मेस्थिते
न स मे शर्म च वर्म च भव गायत्री लोभभि प्रविशामि ॥

त्रैष्टुभं त्वचा प्रविशामि जगतीं मासेन प्रविशामि ।
अनुष्टुभस्ध्या प्रविशामि पंक्तिर्मज्जा प्रविशामि ॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वेदेवा नाति विध्यन्ति शूराः ।
तन्नस्त्रायतां तन्वः सर्वतो महदायुष्मन्तो जरामुपगच्छेम जीवः ॥

॥इति रक्षोघ्न मन्त्राः ॥

- रक्षोघ्नमन्त्र की समाप्ति पर अग्निशराव किसी पवित्र स्थान पर लेजाकर रखा जावे वा नदी में डाल दिया जावे ॥

॥ अधुनात्र देवार्चनम् ॥

- 'वर' तथा 'कन्या का पिता' ग्रह मण्डलस्थ देवसमुदाय की क्रम पूर्वक पूजा करें । इस स्थल पर कायशोधन आदि सब क्रियाऐं 'द्वार देवता पूजन' के समान ही करनी चाहिऐं । यथा—

॥कायशोधनम् ॥ (शरीर पर पानी की छीटें देना)

तीर्थे स्नेयं तीर्थमेव समानानां भवति मानः ।
शंसो अरुरुषो धूर्ति प्राणङ्मर्त्यस्य रक्षाणो ब्रह्मणस्पतिः ॥

॥पवित्र धारणम् ॥

वसो पवित्रमसि शत धारं वसो पवित्रमसि सहस्त्रधारम् ।
अयक्ष्मावः प्रजया संस्त्रजामि रायस्पोषेण बहुलाभवन्ति ॥

॥स्वात्म पूजनम् ॥ (तिलककरें)

ॐ परमात्मने पुरुषोत्तमाय पञ्चभूतात्मकाय विश्वात्मने नारायणाय
आधार शक्तये समालभनं गन्धो नमः ॥
गन्धलेपं निवार्येत् ॥ एवं अर्घो नमः पुष्पं नमः ॥

॥ दीप पूजनम् ॥ (दीपक को नमस्कार)

सुप्रकाशो महादीपः सर्व तिमिर नाशकः ।
प्रसीद मम गोविन्द दीपोऽयं परिकल्पितः ॥

॥ धूप पूजनम् ॥ (धूप को नमस्कार)

वनस्पति रसो दिव्यो गन्धाढयो गन्धोत्तमः ।
आह्वानं सर्व देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

॥ सूर्य पूजनम् ॥ (सूर्य देव को नमस्कार)

नमो धर्मनिधानाय नमः सुकृति साक्षिणे ।
नमः प्रत्यक्ष देवाय भास्कराय नमो नमः ॥

॥ धूपदीप सङ्कल्पः ॥

यत्रास्ति मातां न पिता न बन्धु र्भ्रातापि नोयत्र सुहृज्जनश्च ।
न ज्ञायते यत्र दिनं न रात्रि स्तत्रापि दीपं शरणं प्रपद्ये ॥

ॐ तत्सदद्यतावत् मासोत्तमे महामांगल्यप्रदेऽमुकमासेऽमुक पक्षेऽमुक तिथौऽमुकवासरे महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः । प्रजापतये, ब्रह्मणे, कलशदेवताभ्यः । चतुर्वेदेश्वराय, (ऋतुपतये नारायणाय) । दुर्गायै, त्र्यम्बकाय, वरुणाय, यज्ञपुरुपाय, अग्निश्वातादिभ्यः, पितृगणदेवताभ्यः, अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्रयम्बकाय,—विवाहोद्वाह देवताभ्यः । मेषादिभ्यो द्वादशलग्नेभ्यः । अश्विन्यादिभ्यः सप्तविंशाति नक्षत्रेभ्यः । भगवते वासुदेवाय, भवायदेवाय, विनायकाय, ह्रां ह्रीं सः सूर्याय, भगवत्यै आमायै, विष्णु-पञ्चायतन देवताभ्यः । इन्द्राय, अग्नयै, यमाय, नैर्ऋत्यै, वरुणाय, वायवे, कुबेराय, ईशानाय, ब्रह्मणे, विष्णवे-दशदिक्पाल देवताभ्यः । अनन्तादिभ्योऽष्टा कुलनाग-देवताभ्यः । अग्नयादित्याभ्यां, वरुणचन्द्रमसोभ्यां, कुमार भौमाभ्यां, विष्णुबुधाभ्यां, इन्द्र बृहस्पतिभ्यां, सरस्वतीशुक्राभ्यां, प्रजापतेशनैश्चराभ्यां, गणपतिराहुभ्यां, रुद्रकेतुभ्यां, ब्रह्मध्रुवाभ्यां, अनन्तागस्तत्याभ्याम् । ब्रह्मणे,

कूर्माय, अनन्ताय, हरये, लक्ष्म्यै, कमलाय, शिख्यादिभ्यः पञ्चचत्वारिंशत्वास्तोष्पति देवताभ्यः **(वर कहे)** आत्मोद्वाह निमितं **(यजमानकहे)** कन्योद्वाहनिमितं—धूपदीप सङ्कल्पात्सिद्धिरऽस्तु धूपो नमः दीपं नमः ॥

- अब तिल, सरसों और जो हाथ में लेकर पृच्छा सम्पादन करें । यथाः

ॐ गायत्र्यै नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३ ॥ ॐ तत्सदद्यतावत् मासोत्तमे महामांगल्यप्रदेऽमुकमासे, ऽमुक पक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे महागणपतिः, कुमारस्य, श्रियः सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, विश्वकर्मणः—द्वारदेवतानाम् । प्रजापते, ब्रह्मणः कलशदेवतानाम् । ब्रह्मविष्णु महेश्वर देवतानाम् । चतुर्वेदिश्वस्य, (ऋतुपते नारायणस्य) , दुर्गायाः, त्र्यम्बकस्य, वरुणस्य, यज्ञपुरुषस्य, अग्निष्वातादिनां, पितृगणदेवतानाम् । अग्नेः, पुष्टिपते, प्रजापतेः, अर्यम्णे, गन्धर्वस्य, त्र्यम्बकस्य-विवाहोद्वाह देवतानाम् । अग्नेः, वायुः, सूर्यस्य, चन्द्रमसः, विष्णोः प्रायाश्चितयागदेवतानाम् । मेषादिनां द्वादश लग्नानाम् । अश्विन्यादिनां सप्तविंशाति नक्षत्राणाम् । वायवादिनां विष्णुपञ्चायतन देवतानाम् । इन्द्रादिनां दशदिक्पाल देवतानाम् । अनन्तादिनामऽष्टा कुलनागदेवतानाम् । आदित्यादिनामैकदशग्रहाणाम् । अखण्ड ब्रह्माण्डदेवतानाम् । हेरुकादिनां, वटुकादिनाम् (वरकहे) **आत्मोद्वाह निमितं** (यजमान कहे) **कन्योद्वाह निमितं (दोनों अलग-अलग कहें) अर्चामऽहं करिष्ये । (आचार्य कहे) ॐ कुरुष्व ।** यवान् विकीर्य ॥

- 'तिलसर्षपयवान्विकीर्य'— हाथ में रखे तिलादि इधर उधर फैंक दें ।

॥अथासनम् ॥

- पुनः देवताओं के नामों का उच्चारण करते हुए ग्रहमण्डल में प्रत्येक देवता के अपने-अपने कोष्ठक में एक-एक दर्भाङ्कुर आसन रूप में भेंट करें । यथाः

महागणपतिः, कुमारस्य, श्रियः, सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, विश्वकर्मणः द्वारदेवतानाम् । प्रजापतेः, ब्रह्मणः, कलशदेवतानाम् । ब्रह्म विष्णु महेश्वर देवतानाम् । चतर्वेदिश्वरस्य,(ऋतुपते नारायणस्य) । दुर्गायाः, त्रयम्बकस्य, वरुणस्य, यज्ञपुरुषस्य, अग्निश्वातादिनाम् पितृगणदेवतानाम । अग्नेः, पुष्टिपतेः प्रजापतेः । अर्यम्णः, गन्धर्वस्य, त्र्यम्बकस्य—विवाहोद्वाहदेवतानाम् । अग्नेः, वायोः, सूर्यस्य, चन्द्रमसः, विष्णोः प्रायश्चित देवतानाम् । मेषादिनां द्वादशलग्नानाम् । अश्वन्यादिनां सप्तविंशाति नक्षत्राणाम् । वासुदेवादिनां विष्णु पञ्चायतन देवतानाम्, इन्द्रादिनां दशदिक्पाल देवतानां, अनन्तादिनामऽष्टकुल नागदेवतानाम् । अदित्यादिनामैकादश ग्रहाणाम् । हेरुकादिनां, वटुकादिनां इदमासनं नमः ॥

● **पुनः हाथ में यव के कुछ दाने लेकर अगली क्रिया। यथा :**

महागणपतये, कुमाराय, श्रिये, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे—द्वारदेवताभ्यः। प्रजापतये, ब्रह्मणे-कलशदेवताभ्यः। ब्रह्मविष्णु महेश्वर देवताभ्यः। चतुर्वेदेश्वराय, (ऋतुपते नारायणाय), दुर्गायै, त्र्यम्बकाय, वरुणाय, यज्ञपुरुषाय, अग्निष्वातादिभ्यः, पितृगण देवताभ्याः) अग्नये, पुष्टिपतयेः, प्रजापतयेः, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय-विवाहोद्वाह देवताभ्यः। अग्नये, वायवे, सूर्याय, चन्द्रमसे, विष्णवे प्रायाश्चितदेवताभ्यः। मेषादिभ्योद्वादश लग्नेभ्यः। अश्विन्यादिभ्यः सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः। भगवते वासुदेवाय, भगवते भवाय देवादिभ्यः विष्णुपञ्चायतन देवताभ्यः। अनन्तदिभ्योऽष्टकुल नागदेवताभ्यः। आदित्यादिभ्यः एकादशग्रहेभ्यः। अखण्ड ब्रह्माण्ड देवताभ्यः, हेरुकादिभ्यः, वटुकादिभ्यः, क्षेत्रेशदेवताभ्योः (वर-यजमान् पृथक-पृथक कहें) युष्मान् पूजयामि ॥ (आचार्य कहे) ॐ पूजय ॥

● जौ के दाने हाथ में रखे हुए ही—

महागणपतिं, कमारं, श्रीं, सरस्वतीं, लक्ष्मीं, विश्वकर्मणं—द्वारदेवताः। प्रजापतिं ब्रह्माणं—द्वारदेवताः। प्रजापतिं ब्रह्माणं-कलशदेवताः। चतुर्वेदेश्वरं, (ऋतु पतिनारायणम्) , दुर्गां, त्र्यम्बकं, वरुणं, यज्ञ पुरुषं, अग्निष्वातादीन् पितृगणदेवताः। अग्निं, पुष्टिपतिं, प्रजापतिं, गन्धर्वं, त्र्यम्बकं विवाहोद्वाहदेवताः। अग्निं, वायुं, सूर्यं, चन्द्रमसं, विष्णुं प्रायश्चितयागदेवताः। मेषादीन् द्वादश-लग्नानि। अश्विन्यादीन् सप्त विंशति नक्षत्राणि। वासुदेवादीन् विष्णु पञ्चायतन-देवताः। इन्द्रादीन् दशलोकपाल देवताः। आदित्यादीनैकादशग्रहान्, अखण्ड-ब्रह्माण्डदेवताः। हेरुकादीन्, वटुकादीन् (वर-यजमान् पृथक-पृथक कहें)—**युष्मान् आवाहयिष्यामि।** (आचार्यकहे)— **ॐ आवाह्य ॥**

● वर-यजमान अपने-अपने दक्षिण हाथ में रखे जौ के दाने बायें हाथ में रखकर दक्षिण हाथ से एक-एक पुष्प दल (पत्र) (मन्त्र समाप्ति पर) छोड़कर प्रत्येक देवता का यथा क्रम निम्न अनुष्टुप् छन्दों तथा वेदमन्त्रों से आवाहन क्रिया का सम्पादन करें। यथा—

॥आवाहनानि ॥

॥गणेशस्यादौ ॥

आवाहयाम्यहं देवं, गणेशं सुरपूजितम्।
सदैव विघ्न हर्तारं, सर्वकामफलप्रदम् ॥

रक्त वर्णो महातेजा, रक्तस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

निषुसीदगणपते गणेषुत्वाहुर्विप्रतं कविनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कमघवञ्चिमर्च ॥
॥इतिमन्त्रः ॥

॥कुमाररस्य ॥

आवाहयाम्यहंदेवं, कुमारं षणमुखं प्रभुम्।
मयूरासनमारूढं, भक्ता नामऽभयङ्करम् ॥
शुक्लवर्णो महातेजा, शुक्ल स्त्रिग्दामभूषिताः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
कुमारं मातः युवतिः समुब्दं गुहाविभार्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न निमज्जनासः पुरा पश्यन्तिमारुतौ ॥इतिमन्त्रः ॥

॥श्रियः ॥

आगच्छागच्छदेवेशि! क्षीरार्णव समुद्भवे।
लोकानामुपकारार्थं, सन्निधं कुरु सर्वदा ॥
रक्तवर्णोमहातेजा, रक्तस्त्रिग्दामभूषिताः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्ति नाद प्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीं उपह्वये श्रीर्मा देवि जुषताम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥सरस्वत्याः ॥

आवाहयाम्यहं देवीं, वागीशीं वाक्यप्रदायिनीम्।
हंस संस्थां सुरदितिजैः, पूजितं विघ्नहारिणीम् ॥

शुक्लवर्णो महातेजा, शुक्ल स्रिग्दामभूषिताः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
इयं शुष्मेभिर्विसखा इवरुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरुर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेमधीतिभिः ॥
॥इतिमन्त्रः ॥

॥लक्ष्म्याः ॥

आवाहयाम्यहं देवीं; लक्ष्मीं त्रैलोक्य पूजिताम् ।
भक्तं मोहाकुलमार्तं, पश्यन्ति स्निग्ध चक्षुषा ॥
रक्तवर्णो महातेजा रक्त स्रिग्दामभूषितः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
कांस्यास्मितां हिरण्य प्राकारां आऽर्द्रां ज्वलन्तीं तृपतां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामि होपह्वये श्रियम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥विश्वकर्मणः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, विश्वकर्मणमीश्वरम् ।
सर्वदेवगणानांच, सदाशिल्प प्रवर्तकम् ॥
शुक्लवर्णो महातेजा, शुक्लस्रिग्दामभूषितः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
विश्वकर्मा विश्वदेवो विश्वजिद् विश्वदर्शितः ।
ते त्वा घृतस्यधारया श्रैष्ठ्याय समभूषत ॥इतिमन्त्रः ॥

॥ब्रह्मण: ॥

आवाहयाम्यहं देवं, ब्रह्माणं च चतुर्भुजम्।
हंस यानं स्वक्षमाला, कमण्डलुधरं प्रभुम्॥
रक्त वर्णो महातेजा, रक्तस्त्रिग्दामभूषित:।
बलि: पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
ब्रह्मदेवानां पदवी: कविनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनोगृध्राणां स्वदितिर्वनानां सोम: पवित्रमत्येतिरेमन्॥इतिमन्त्र:॥

॥विष्णो: ॥

आवाहयाम्यहं देवं, गदाशंखाब्जचक्रिणम्।
अतसी पुष्पसङ्काशं, पीत वाससमच्युत्तम्॥
पीतवर्णो महातेजा, पीतस्त्रग्दामभूषित:।
बलि: पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
प्रतद्विष्णु: स्तवते वीर्येण मृगो न भीम: कुचरो गरिष्ठ:।
यस्यो रुषो व्रिशु विक्रमणेश्वऽधिक्षयन्ति भुवनानिविश्वा॥इतिमन्त्र:॥

॥शङ्करस्य॥

आवाहयाभ्यहं देवं, ईश्वरं पार्वतीपतिम्।
वृषभासनमारूढं, नागाभरणभूषितम्॥
शुक्लवर्णो महातेजा, शुक्लस्त्रिग्दामभूषित:।
बलि: पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
यो रुद्रौ अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु।
यो रुद्रो विश्व भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु देवा:॥इतिमन्त्र:॥

॥दुर्गायाः ॥

आवाहयाम्यहं दुर्गां, शंख चाप शरान्विताम्।
त्रिशूलहस्तांवरदां, त्रिनेत्रां चारु हासिनीम् ॥

रक्तवर्णो महातेजा, रक्तस्त्रिग्दामभूषिताः।
बलिः पुष्पं-वस्श्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

जातवेदसे सुनवाम सोममऽरातीयतो निदहातिवेदाः।
स नस्पर्शदऽति दुर्गाणि विश्वासिन्धुं दुरितात्यग्निर्नमः ॥इतिमन्त्रः ॥

॥इन्द्रस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, वज्रहस्तं शचीपतिम्।
ऐरावतसमारूढं, पूर्वस्यां दिशि पूजयेत ॥

पीतवर्णो महातेजा, पीतस्त्रिग्दामभूषितः।
बलि पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषुदेवा वर्धेथां गीर्भिरिळयामदन्ताम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अग्नेः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, रक्तं वैश्वानरं तथा।
शक्तिहस्तं शुकारूढं, आग्नेयां दिशि पूजयेत् ॥

रक्तवर्णो महातेजा, रक्तस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

अग्निः सप्तिं वाजम्भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्म निष्ठम्।
अग्निरोदसी विचरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥यमस्य ॥

आवाहयाम्हं देवं, धर्म राजं महाबलिम्।
महिषासनमारूढं, दक्षिणां दिशि पूजयेत्॥
पीतवर्णो महातेजा, पीतस्त्रिग्दामभूपिता।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
यमो दधार पृथिवीं यमोद्यामुत सूर्यम्।
यमाय सर्वमित्तस्थे यत्प्राणाद्वायुरक्षितम्॥इतिमन्त्रः॥

॥ नैर्ऋतेः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, नैर्ऋतं दैत्य पूजितम्।
खड्ग पाणिं रक्षो व्याप्तं नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्॥
नील वर्णो महातेजः, नील स्त्रिग्दामभूपितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
यन्ते देवी नैर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्व विचर्त्यम्।
तन्तेविष्याम्यायुपोनुमध्येथा विषितः पितंऽद्धि प्रमुक्तः॥इतिमन्त्रः॥

॥वरुणस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, वरुणं यादसां पतिम्।
पाशहस्तं तिमिवाहं, पश्चिमां दिशि पूजयेत्॥
श्याम वर्णो महातेजा, श्यामस्त्रिग्दामभूपितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदऽवाधमं विमध्यं श्रथाय।
अथावयमादित्यव्रते तवानागसोऽदित्येस्याम्॥इतिमंत्रः॥

॥वायोः॥

आवाहयाम्यहं देवं, मारुतं ध्वज धारिणम्।
सर्वेषां जीवनं वीरं वायव्यां दिशि पूजयेत्॥

रक्तवर्णो महातेजः, रक्तस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता। तेषां पाहि श्रुधिहवम्॥इतिमन्त्रः॥

॥कुबेरस्य॥

आवाहयाम्यहं देवं, कुबेरं गदया युतम्।
नरासन समारूढं, उत्तरां दिशि पूजयेत्॥

कृष्ण वर्णो महातेजः, कृष्णस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

सोमा धेनुं सामो अर्वन्तमाशुं सोमोवीरं कर्मण्यं ददाति।
साधन्यं वितथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशतस्मै॥

राजाधिराजाय प्रसह्य साधने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु कुबेराय,

वैश्रवणाय महाराजाय वै नमो नमः॥इतिमन्त्रः॥

॥ईशानस्य॥

आवाहयाम्यहं देवं, ईशानं शूल धारिणम्।
शिखश्चन्द्रं वृषारूढं, ऐशान्यां दिशि पूजयेत्॥

शुक्लवर्णो महातेजः, शुक्लस्त्रिग्दामभूपितः।

बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ईशानं त्वा शुश्रुषमा वयं, धनानां धनपते।
गोमदग्ने अश्वद् भूरिपृष्ठं हिरण्यवदन्नवद्धेहिमह्यम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥ब्रह्मणः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, ब्रह्माणं गायत्री पतिम्।
चतुरास्यं हंसयानम्, ऊर्ध्वायां दिशि पूजयेत् ॥
रक्तवर्णो महातेजः, रक्तस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ब्रह्मज ज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमतः सुरुचो वे न आयुः।
सुबुध्न्या उपमायस्य विष्ठाः सतश्च योनिमऽसतश्च विवः ॥इतिमन्त्रः ॥

॥विष्णोः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, विष्णुं त्रैलोक्य पूजितम्।
रमायुतं खगारढं, अधायां दिशि पूजयेत ॥
पीतवर्णो महातेजः, पीत स्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
वषट्ते विष्ण आस आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तुत्वा सुष्टुतयो गिरामे यूयं पातु स्वस्तिभिः सदानः ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथात्रग्रहाणां तत्रादौसूर्यस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, भानुं सर्व जगद्गुरुम्।
अरुणः सारथीयस्य, सप्ताश्वरथवाहनः ॥

रक्तवर्णो महातेजः, रक्त स्त्रिग्दामभूषितः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
आकृष्णेन तेजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥चन्द्रस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, चन्द्रं नक्षत्र नायकम् ।
शशशरीरालङ्कारं, प्रत्यक्षं लोक नायकम् ॥
शुक्ल वर्णो महातेजः, शुक्लस्त्रिग्दाम भूषितः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
याते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोधीष्वप्सु ।
भिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्सोम प्रतिहव्याभाय ॥इतिमन्त्रः ॥

॥भौमस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, भौमं मयूरवाहनम् ।
लोहिताङ्गं महौजस्कं, शत्रूणां च भयङ्करम् ॥
रक्तवर्णो महातेजः, रक्त स्त्रिग्दामभूषितः ।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव धूपोऽयं प्रति गृह्यताम् ॥
अग्निर्मूर्धा विवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥इतिमन्त्रः ॥

॥बुधस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, बुधं बुद्धि विवर्धनम् ।
सुवर्ण रथगंदीपं, सोमवंशस्य दुःखहम् ॥

पीतवर्णो महातेजः, पीतस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपौऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
बोधस्वमे मघवन्वाचमेमां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म साधमावे जुषस्व ॥इतिमन्त्रः॥

॥अथ गुरोः॥

आवाहयाम्यहं देवं, जीवं देवेन्द्र मन्त्रिणम्।
गजासनं देव पूज्यं, वाक्पतिं च ग्रहेश्वरम्॥
पीत वर्णो महातेजः, पीत स्त्रिग्दाम भूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम॥
बृहस्पते अतियदर्यो अर्हद् द्युमद् विभाति क्रतु मज्जनेषु।
यद्दीदयच्छ वसर्त प्रजात तदस्मासु द्रविणं देहि चित्रम्॥इतिमन्त्रः॥

॥भार्गवस्य॥

आवाहयाम्यहं देवं, भार्गवं दैत्य पूजितम्।
असुराणां गुरुं चैव, ग्रहाणामपि पूजितम्॥
शुक्लवर्णो महातेजः, शुक्लस्त्रिग्दाम भूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
अन्नात्परिस्त्रतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रम्।
ऋतेन सत्यमिन्द्रयं विपानं शुक्रमन्धस्येन्द्रियस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥इतिमन्त्रः॥

॥शनैश्चरस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, सूर्यपुत्रं शनैश्चरम्।
मेचक प्रति वर्णाभं, भूत संहार कारकम्॥

कृष्ण वर्णो महातेजः, कृष्णस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोयं प्रतिगृह्यताम्॥

शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तुपीतये। शँय्योरभिस्त्रवन्तु नः ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथ राहोः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, सैंहिकेयं महाबलिम्।
अबाहुमन्तरिक्षस्थं, देव दानव पूजितम्॥

हरिद्वर्णो महातेजः, हरित्स्त्रिग्दाम भूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

कयानश्चित्र आभूवदूती सदा वृधाः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥इतिमन्त्रः ॥

॥केतुः ॥

आवाहयाम्हं देवं केतुं सर्वग्रहान्तकम्।
नीलजीमूतसङ्काशं, मृत्यु तुल्य पराक्रमम्॥

धूम्रवर्णो महातेजः, धूम्रस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

केतुः कृण्वन्नकेतवे पेशोभर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथा ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथ ध्रुवस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, ध्रुव राजं महाबलिम्।
ऋषीणां प्रवरं श्रेष्ठं, रुद्रैकादशवासिनाम् ॥
ग्रहचक्रस्थितं नित्यम्, उदीच्यां दिशि पूजयेत् ॥इतिमन्त्रः ॥
रक्तवर्णो महातेजः, रक्तस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पंचरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ध्रवौद्यौ ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वताइमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो राजा विशामसि ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथागस्त्यस्य ॥

आवाहयाम्यहं देवं, अगस्त्यं देव पूजितम्।
उग्र रूपधरं नित्यं, रुद्ररूपमुनिस्तुतम् ॥
दक्षिणास्यां ज्वलनं च, जलधि चुल्लकी करम् ॥
पीतवर्णो महातेजः, पीतस्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभो वर्णा वृषिरुग्रः पुपोष सत्यादेवाप्वाशिपोजगाम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथ वास्तोष्पतेः ॥

आवाहयाम्यहं देवं, वास्तोष्पतिमति प्रियम्।
अधोमुख धराकाशं, दिक्षुसर्वासु व्यापकम्।
स्वेच्छा वर्ण महातेजः, स्वेच्छास्त्रिग्दामभूषितः।
बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारुपाण्याविशत्। सखा सुशेव एधिः नः ॥

वास्तोष्पते प्रति जानी ह्यस्मान, स्वावेशे अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वमेहि प्रति तन्नोजुषस्व शं नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथान्ते क्षेत्र पालानामाह्वानम् ॥

आवाहयाम्यहं देवं, क्षेत्रपालान्महाबलान् ।
दंष्ट्राकरालवदनां, जटामुकुटमण्डिताम् ॥

भूपाताल ख्वं व्याप्यत, संस्थितान्भक्त वत्सलान् ।
नानारूपधरान्देवान्, नानावर्णोपशोभितान् ॥

बलिः पुष्पं चरुश्चैव, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।

गामश्वं पोषयित्वा सनो मृळाति दृशे ॥१ ॥
क्षेत्रस्य पतेः मधुमन्तमूर्मिन्धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।

मधुश्च्युतं घृतमिव सुपूतमृतस्यानः पतयो मृळयन्तु ॥२ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्यावा आपो मधुमान्नो भवन्त्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्यपतिर्मधुमान्नो अस्त्वन्तरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम् ॥इतिमन्त्रः ॥

॥अथात्रावाहनोपरान्त प्रार्थना ॥

भगवन् पुण्डरीकाक्ष, भक्तानुग्रहकारक ।
अस्मदीयानुरोधेन, सान्निध्यं कुरु नः प्रभो ॥

यवान्विकीर्य—बायें हाथ में रखे जौ के दाने दायें हाथ में लेकर इधर-उधर फैंके ।

॥अथ पाद्यम्॥

- नीचे लिखे संज्ञा पदों से 'शन्नोदेवी'० मन्त्र द्वारा जल को अभिमंत्रित करके पाद्य द्रव्य मिला कर देवताओं को पाद्य प्रदान करें। यथा :

शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्त्रवन्तु नः॥

लाजाश्च कुङ्गमंचैव, सर्वोषधिसमन्वितम्। दर्भांकुर जलश्चैव पञ्चांङ्ग पाद्यलक्षणम्॥

महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः। प्रजापतये, ब्रह्मणे—कलशदेवताभ्यः। ब्रह्मविष्णुमहेश्वर देवताभ्यः। चतुर्वेदेश्वरायसानुचराय। (ऋतुपते नारायणाय), दुर्गायै, त्र्यम्बकाय, वरुणाय, यज्ञपुरुषाय, अग्निष्वातादिभ्यः। अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय विवाहोद्वाहदेवताभ्यः। अग्नये, वायवे, सूर्याय, चन्द्रमसे, विष्णवे, प्रायश्चित्याग्देवताभ्यः। मेषादिभ्यो द्वादशलग्नेभ्यः। अश्विन्यादिभ्यो सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः। भगवते वासुदेवाय (सङ्कर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, सत्याय, पुरुपाय, अच्युताय, माधवाय, गोविंदाय, सहस्त्रनाम्ने बिष्णवे) लक्ष्मी सहिताय नारायणाय। भगवते भवायदेवाय (शर्वायदेवाय, रुद्राय दे०, पशुपतयेदे०, उग्रायदे०, भीमायदे०, महादे०, ईशानायदे०) उमा सहिताय शिवाय, पार्वती सहिताय परमेश्वराय। भगवते विनायकाय (एकदन्ताय, कृष्णापङ्गिलाय, गजाननाय, लम्बोदराय, भालचन्द्राय, हरेम्बाय, आखुरथाय, विघ्नेशाय) वल्लभा सहिताय श्रीमहागणेशाय। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय (सप्ताश्वाय, अनश्वाय, एकाश्वाय, नीलाश्वाय, प्रत्यक्षदेवाय, परमार्थसाराय, तेजोरुपाय) प्रभासहिताय आदित्याय। भगवत्यै अमायै (कामायौ, चारवङ्गयै, टङ्कधारिण्यै, तारायै, पार्वत्यै, यक्षिण्यै, श्री शारिका भगवत्यै, श्री शारदा भ०, श्री महाराज्ञी भ०, श्री ज्वाला भ० वैखरी भ०, वितस्ता भ०, गंगा भ० यमुना भ०, कालिका भ०, सिद्धलक्ष्म्यै, महालक्ष्म्यै) सहस्त्रनाम्न्यै भवान्यै। विष्णु पञ्चायतन देवताभ्यः। इन्द्राय, अग्नये, यमाय, नैर्ऋत्यै, वरुणाय, वायवे, कुबेराय, ईशानाय, ब्रह्मणे, विष्णवे-दशदिक्पालदेवताभ्यः। अनन्तादिभ्योऽष्टकुलनागदेवताभ्यः। आदित्यादिभ्यः एकादशग्रहेभ्यः। मेषादिभ्यो द्वादशलग्नेभ्यः। अश्विन्यादिभ्यो सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः। अग्न्यादित्याभ्यां, वरुणचन्द्रमसोभ्यां, कुमार भौमाभ्यां, विष्णुबुधाभ्यां, इन्द्रबृहस्पतिभ्यां, सरस्वती शुक्राभ्यां, प्रजापतिशनैश्चराभ्यां, गणपितराहुभ्यां रुद्रकेतुभ्यां, ब्रह्मध्रुवाभ्यां, अनन्तागस्त्याभ्याम्। ब्रह्मणे, कूर्माय, ध्रुवाय, अनन्ताय, हरये, लक्ष्म्यै, कमलाय, शिख्यादिभ्यः-पञ्चचत्वारिंषद् वास्तोष्पति देवताभ्यः। गौर्यादिभ्यः मातृभ्यः, अखण्ड ब्रह्माण्डदेवताभ्यः, हेरुकादिभ्यः, वटुकादिभ्यः, क्षेत्रेशदेवताभ्योः (वरकहे) आत्मोद्वाहनिमितं (यजमान कहे) कन्योद्वाहनिमितं (दोनों कहें) इदं पाद्यं नमः ॥पाद्यशेषं निवार्येत्॥

॥अथोर्घ्यम्॥

ॐ शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्त्रवन्तुतः॥
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं च दधितण्डुला। यवाः सिद्धार्थकाश्चैवह्यर्घ्यमष्टाङ्गमुच्यते॥

● उपर्युक्त 'शन्नोदेवी०' मन्त्रद्वाराप्रणीतपात्रस्थ जल को अभिमंत्रित कर, उसमें अर्ध्यद्रव्य-पानी, दूध, कुशा, घी, दही, चावल, जौ और तिल अथवा सरसों मिलाकर देवतार्थ अर्ध्यार्पण करें। यथा : **महागणपते, कुमार, श्री, सरस्वती, लक्ष्मी, विश्वकर्मन-द्वारदेताः। प्रजापते ब्रह्मन्- कलशदेवताः। ब्रह्म विष्णु महेश्वर देवत्ताः। चतुर्वेदेश्वरसानुचरा। (ऋतुपति नारायण) , दुर्गे, त्र्यम्बक, वरुण-यज्ञपुरुष। अग्नि, पुष्टिपति, प्रजापति, अर्यम्ण, गन्धर्व, त्र्यम्बक विवाहोद्वाहदेवताः। अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमस, विष्णु-प्रायश्चितयागदेवताः। मेषादयोः द्वादशलग्नानि। अश्विन्यादयोः सप्तविंशति नक्षत्राणि। भगवान् वासुदेवादीन् विष्णु पञ्चायतन देवताः। इन्द्र, अग्ने, यम, नैर्ऋते, वायो, कुबेर, ईशान, ब्रह्मन, विष्णो—दशदिक्पाल देवताः। इन्द्रवज्रहस्त, अग्ने-शक्तिहस्त, यमदण्डहस्त, नैर्ऋते खड्गहस्त, वरुणपाशहस्त, वायो ध्वजहस्त, कुबेर गदाहस्त, ईशान त्रिशूलहस्त, ब्रह्मन् पद्महस्त, विष्णोचक्रहस्त। अनन्ताद्योऽष्टकुलनागदेवताः। अगन्यादित्यौ, वरुणचन्द्रमसौ, कुमारभौमौ, विष्णु बुधौ, इन्द्र बृहस्पत्यौ, सरस्वती शुक्रौ, प्रजापति शैनेश्चरौ, गणपति राहु, रुद्रकेतु, ब्रह्मध्रुवौ, अनन्तागस्त्यौ। ब्रह्मन्, कूर्म, ध्रुव, अनन्त, हरे, लक्ष्मीः, कमले, शिख्यादयाः पञ्चचत्वारिंशद्वास्तोषपति देवताः। दुर्गादयोः मातरः, श्रीर्रादयोः मातरः, ॐ भूर्देवताः, ॐ भुवोर्दे०, ॐ स्वर्दे०, ॐ भूभुवः स्वर्दै०, अखण्ड ब्रह्माण्ड देवताः, महागायत्रि, सावित्रि, सरस्वति, हेरुकादयो, वटुकादयाः** (वरकहे) **आत्मो-द्वाह निमितं** (यजमानकहे) **कन्योद्वाह निमितं** (दोनों कहे) **इदमोऽर्ध्यं नमः॥**

॥अथ गन्धम्॥ गन्धद्रव्यभेंट करे॥

महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः। प्रजापतये, ब्रह्मणे-कलशदेवताभ्यः। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरदेवताभ्यः। चतुर्वेदेश्वराय सानुचराय (ऋतुपतयेनारायणाय), दुर्गायै, त्र्यम्बकाय, वरुणाय, यज्ञ पुरुषाय, अग्निष्वातादिभ्यः। अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय-विवाहोद्वाह देवताभ्यः। अग्नये, वायवे, सूर्याय, चन्द्रमसे, विष्णवे-प्रायश्चितयागदेवताभ्यः। मेषादिभ्यो द्वादश लग्नेभ्यः। अश्विन्यादिभ्यो सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः। भगवते वासुदेवाय, भगवते भवायदेवाय। भगवते विनायकाय। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय। विष्णु पञ्चायतन देवताभ्यः। इन्द्रादिभ्यो दशदिक्पाल देवताभ्यः। अनन्तादिभ्योऽष्टकुलनागदेवताभ्यः। आदित्यादिभ्यः एकादशग्रहेभ्यः। ब्राह्मयादिभ्यो मातृभ्यः। अखण्डब्रह्माण्ड देवताभ्यः, हेरुकादिभ्यो वटुकादिभ्यः, क्षत्रेशदेवताभ्यः **(वरकहे)** आत्मोद्वाह निमितं **(यजमान कहे)** कन्योद्वाह निमितं **(दोनों कहें)** समालभनं गन्धो नमः। (गन्धलेपं निवार्येत्) एवं अर्घोनमः पुष्पं नमः॥

॥अथ धूपदीप सङ्कल्पः॥

यत्रास्ति माता न पिता न बन्धु, र्भ्रातापि नो यत्र सुहृज्जनश्च।
न ज्ञायते यत्र दिनं न रात्रि स्तत्रापि दीपं शरणे प्रपद्ये॥

ॐ तत्सत् अद्य तावत् मासोत्तमे महामांगल्यप्रदेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः प्रजापते ब्रह्मणे-कलश देवताभ्यः। अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये। अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय,-विवाहोद्वाहदेवताभ्यः। अग्नये, वायवे, सूर्याय, चन्द्रमसे, विष्णवे-प्रायश्चितयागदेवताभ्यः। मेषादिभ्यो द्वादशलग्नेभ्यः। अश्विन्यादिभ्यः सप्त-विंशाति नक्षत्रेभ्यः। अनन्तादिभ्यो विष्णुपञ्चायतनदेवताभ्यः। इन्द्रादिभ्यो दशदिक्पाल देवताभ्यः। अनन्तादिभ्योऽष्टकुलनाग देवताभ्यः। आदित्यादिभ्यः एकादशग्रहेभ्यः अखण्ड ब्रह्माण्डदेवताभ्यः। हेरुकादिभ्यो वटकादिभ्यः, क्षेत्रेशदेवताभ्यो (वरकहे) आत्मोद्वाह निमितं (यजमान कहे) कन्योद्वाह निमितं (दोनों कहें) धूपदीपसङ्कल्पात् सिद्धिरस्तु धूपोनमः दीपं नमः ॥ (पुनः) महागणपतेः, कुमारस्य, श्रियः, सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, विश्वकर्मणः-द्वारदेवतानाम्। चतुर्वेदेश्वरस्यसानुचरस्य। (ऋतु पतेः नारायणस्य) , अर्यम्णस्य, गन्धर्वस्य, त्र्यम्बकस्य-विवाहोद्वाहदेवतानाम्। अग्नेः, वायोः, सूर्यस्य, चन्द्रमस्, विष्णोः-प्रायश्चितयाग देवतानाम्। मेषादिनां द्वादश लग्नानाम्। अश्विन्यादिनां सप्तविंशति नक्षत्राणाम्। वासुदेवादि विष्णु-पञ्चायतन देवतानाम्। इन्द्रादि दशदिक्पालानाम्। ॐ भूर्देवतानाम्, ॐ भूवेर्दिवतानां, ॐ स्वर्देवतानां, अखण्ड ब्रह्माण्डदे-वतानां, महागायत्र्याः, सावित्र्याः, सरस्वत्याः, हेरुकादिनां वटुकादिनामऽर्ध्यदानाद्यर्चन् विधिः सर्वः परिपूर्णमऽस्तु। एवमऽस्तु। अन्नं नमः २ आज्यं नमः २ अद्यदिने अद्य यथा सङ्कल्पितकार्ये सिद्धिरस्तु ॥ (वर यजमान हाथ जोड़ प्रार्थना करें) अन्नहीनं, क्रियाहीनं विधिहीनं, द्रव्यहीनं, मन्त्रीहीनं यत्कृतं तत्सर्वमऽच्छिद्रं सम्पूर्णमऽस्तु (आचार्य कहे) एवं अस्तु ॥

॥आपोशानमाचमनीयम्॥

- अर्घ पात्र में जल लेकर :

शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्यो रभिस्रवन्तु नः ॥

महागणपतये, कुमाराय, श्रिये, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे-द्वारदेवताभ्यः। अग्नेय, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय त्रयम्बकाय-विवाहोद्वाह देवताभ्यः। अग्नये, वायवे, सूर्याय, चन्द्रमसे-प्रायश्चितयागदेवताभ्यः। प्रजापतये, ब्रह्मणे-कलशदेवताभ्यः। ब्रह्मविष्णु महेश्वरदेवताभ्यः। मेषादिभ्यो द्वादश लग्नेभ्यः। अश्वन्यादिभ्यः सप्तविंशति नक्षत्रेभ्यः। वासुदेवादिभ्यो विष्णु पञ्चायतन देवताभ्यः। इन्द्रादिभ्यो दशदिक्पालदेवताभ्यः। अनन्तादिभ्यो मातृभ्यः, हेरुकादिभ्यो वटुकादिभ्यः, क्षेत्रेशदेवताभ्योः (वर कहे) आत्मोद्वाहनिमितं (यजमान कहे) कन्योद्वाह निमितं (दोनों कहें) आपो शानं नमः आचमनीयं नमः ॥

(पुनः)

शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्यो रभिस्रवन्तु नः ॥

महागणपतये० (शेष उपर्युक्त) . . . क्षेत्रेशदेवताभ्योः दक्षिणायै तिलहिरण्य-रजत निष्कर्णन्ददानि ॥ पुनः महागणपतये (शेष उपर्युक्त) क्षेत्रेशदेवताभ्यः सदक्षिणान्नेन प्रीयन्तां प्रीताः सन्तु ॥ (आचार्यकहे)— एवमऽस्तु ॥ (अर्घपात्र से जल निर्माल्य में गिरायें)

॥अथाभिषेकम् ॥

अभिषेक का अर्थ है— छिड़कना, पानी की छींटे देना, राजा वा देव-मूर्ति स्थापन के मङ्गलमय अवसर पर जल सिञ्चन द्वारा प्रतिष्ठापनादि । इस स्थल पर वर एवं कन्या का अभिषेक करने का विधान है, जो यथार्थ है । एककारण यह है कि विवाह संस्कार के अवसर पर वर को विष्णुरूप तथा कन्या को लक्ष्मीरूपा संज्ञा दी जाती है । दूसराकारण—वेद मन्त्रों तथा मांगलिक द्रव्यों से मिश्रित जल द्वारा किया जाने वाला अभिषेक मानव में श्रद्धा को उत्पन्न करने वाला तथा आलस्य एवं निद्रा को दूर करने का एक उत्तम साधन है । यह आवश्यक नहीं कि अभिषेक प्रकरण में आये सारे के सारे मन्त्र पढ़कर अभिषेक क्रिया सम्पन्न की जाये वरन् समय की सुविधा अनुसार— सब अथवा कुछ मन्त्रों अथवा 'या आपोदिव्याः०' 'अभित्वावचसा०' आदि केवल दो मन्त्रों से ही अभिषेक हो सकता है ।।इत्यलम् ॥

- **सर्वोषधि जाफलयुते समजलपात्रे-संव्वः सृजामीतिकृत्वा वराभिषेकम् ।
  सर्वगन्धैः फलोत्तरैः सशिरस्कं स्नापयित्वा आहतेनवाससा प्रच्छादय ॥**

भाषा : सर्वोषधियुक्त-जायफल या सुपारी युक्त शुद्ध जल-प्रणीत पात्र में 'संव्वः सृजामिं आदि मन्त्र युग्म से पुष्प डाल कर, अहत अर्थात नया वस्त्र लेकर और उससे ढककर, शिरस्त्राण (सेहरा आदि) धारण किये हुए वर को कथित सुगन्धित युक्त जल से, वर के हाथ में जायफल सुपारी देकर निम्नलिखित मन्त्रों से अभिषेक करें । यथा—

(१)

साविर्हिदिव प्रथमाय पित्रे, वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथाऽस्मभ्यं सवितुर्वार्याणि, दिवे दिव आसुवा भूरि पश्वः ॥१॥
भूतौभूतेषु चरति प्रविष्टः, स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्यमृत्युश्चरति राजसूयं, स राज्या राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥२॥

येभिः शिल्पैः पपृथानाम हृदयेभिर्द्यामभ्यपिं शत्रजापतिः।
येभिर्वाचं विश्वरूपेभिरख्यं, स्तेनेममग्न इह वर्चसा समंग्धि ॥३ ॥
ये भिरादित्यस्तपति प्रकेतुभि, र्ये भिः सूर्यो ददृशे चित्रभानुः।
येभिर्वाचं पुष्कले भिख्ययं, स्तेन मग्न इह वर्चसा समंग्धि ॥४ ॥
आयम्भातु शवसा पञ्चकृष्टि, रिन्द्र इवज्येष्ठे भवतु प्रजानाम्।
अस्मिन्नस्तु पुष्कलं चित्रभानु, अयं पृणातु रजसो विमानम् ॥५ ॥
यत्ते शिल्पं कश्यप रोचनावद्, इन्द्रिया वत्पुष्कलं चित्रंभानुः।
यस्मिन्सूर्यो अपिताः सप्त साकं, तस्मिन राजानमधिविश्रेयमम् ॥६ ॥
व्याघ्रो वै व्याघ्रे अधिविक्रमस्त दिशो महीः।
विशस्त्वा सर्वा वांछन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥७ ॥

- या आपो दिव्याः पयसा संबभूवु र्याअन्तरिक्ष्या उत पार्थिवासः।
  तासां त्वा सर्वासां रुचिभिपिञ्चामि वर्चसा ॥८ ॥

- अभित्वा वर्चसा सिचं यज्ञेन पयसा सह।
  यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥९ ॥
  इन्द्रं विश्वा अविवृधत्समुद्रं व्यचसं गिरा।
  रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१० ॥

(२)

अभिप्रेहि वीर्यस्वोग्राश्चिता सपत्नहा।
आतिष्ठमित्र वर्धनस्तुभ्यं देवा अधिब्रुतन् ॥१ ॥
आतिष्ठवृत्र हन् रथं युक्ताते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनां सुतेमनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२ ॥

आतिष्ठन्तं परिविश्वे अभूषं श्रियो वसानश्चरति सुरोचिः।
महत्तदस्यासुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३ ॥

अनुत्विन्द्रो मदत्वऽनु बृहस्पतिरऽनु सामो अन्वग्निरावीत्।
अनुत्वा विश्वे अवन्तु देवाः सप्तराजानोय उदाभिषिक्ताः ॥४ ॥

अनुत्वा मित्रा वरुणा इहावातामनु द्यावा पृथिवी ओषधीभिः।
सूर्योऽहोभिरनुत्वाऽवतु चन्द्रमा नक्षत्रैरनु त्वावीत् ॥५ ॥

द्यौश्चत्वा पृथिवी च प्रचेतसा यज्ञो बृहद्दक्षिणात्वा पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकिते सोमो अग्निरनु त्वावतु सविता सवेन ॥६ ॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानं सिंह हिन्वन्ति महते धनाय।
मन्मृज्यन्ते द्वीपिन प्स्वन्तर रुषं नन्दुभ्यस्तस्थिवांसम् ॥७ ॥

(३)

अपांय्यो द्रवणे रहस्तमहमस्मा अमुष्मा अमुष्यायणाय तेज से ब्रह्मवर्चसे गृहणमि ॥
अपांय्यो ऊर्मो रसस्तमहमस्मा अमुष्मा अमुष्यायणाय ओजसे क्षत्राय गृहणमि ॥
अपांय्यो मध्ये रसस्तमहमस्मा अमुष्मा अमुष्यायणाय प्रजायै पुष्ट्यै गृहणमि ॥
अपांय्यो यज्ञिया तनूस्तमहमस्मा अमुष्मा अमुष्यायणाय आयुषे दीर्घायुत्वाय गृहणामि ॥

- यहां उक्त वाक्यों में 'अमुष्मै' पद के स्थान पर वर का नाम च० वि० में लेना चाहिए।

(४)

रथे अक्षेषु वृषभस्य वाजे, वाते पजन्ये वरुणस्य शुष्मे।
इन्द्रं या देवी सुभगा जज्ञान, सेयमागाद् वर्चसा संविदाना ॥१ ॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये, गोष्वश्वेषु पुरुषेष्वन्तः।
इंद्रं या देवी सुभगा जजान, सेयमागाद् वर्च सा संविदाना ॥२ ॥

सिंहे व्याघ्र उतया पृदाकौ, त्विषिरग्नौ ब्रह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान, सेयमागाद वर्चसा संविदाना ॥३ ॥
या राजन्ये दुन्दुभा वायताया, गश्वस्य क्रन्वे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगाजजान, सेयमागाद वर्चसा संविदाना ॥४ ॥

(अथर्व का० ६/सू० ३८/मं० ३/२/१/४)

(५)

राळऽसि विराळसि सम्राळऽसि स्वराळऽसि,
इन्द्राय त्वा मधुमते मधुमन्तं श्रीणामि।
इन्द्राय त्वोजस्वत ओजस्वन्तं श्रीणामि,
इन्द्रायत्वा पयस्वते पयस्वन्तं श्रीणामि।
इन्द्राय त्वाऽयुष्मत आयुष्मन्तं श्रीणामि ॥
वर्चोसि तन्मे नियच्छ तत्ते नियच्छामि,
ओजोसि तन्मेनियच्छ तत्ते नियच्छामि।
पयोसि तन्मे नियच्छ तत्ते नियच्छामि,
आयुरसि तन्मे नियच्छ तत्ते नियच्छामि ॥
वर्चस्वदऽस्तु मे मुखं वर्चस्वच्छिरो अस्तु में,
वर्चस्वान्विश्वतः प्रत्यङ् वर्चसा संपिपृग्धि मा।
ओजस्वदऽस्तु में मुखं ओजस्वच्छिरो अस्तु,
ओजस्वान्विश्वतः प्रत्यङ् ओजसा संपिपृग्धिमा ॥
पयस्वदऽस्तु में मुखं पयस्वच्छिरो अस्तु में,
पयस्वन्विश्वतः प्रत्यङ् पयसा संपिपृग्धिमा ॥
आयुष्मदऽस्तु में मुखं आयुष्मच्छिरो अस्तुमे,
आयुष्मन्विश्वतः प्रत्यङ् पयसा संपिपृग्धिमा ॥

(६)

इदमहं गायत्रेणच्छन्दसा, त्रिवृतास्तोमेन रथान्तरेण,
साम्नाग्निना देवतया तेजसते वर्च आददेऽसौ।

इदमहं त्रैष्टुभेनच्छन्दसा, पञ्चदशेन स्तोमेन बृहता।
साम्नेन्द्रेण देवतयोजस्ते क्षत्रमाददेऽसौ।

इदमहं जागतेन छन्दसा, सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण,
साम्ना विश्वे देवैर्देवतया प्रजां ते पुष्टिमाददेऽसौ।

इदमहं अनुष्टुभेन छन्दसैकविंशेन स्तोमेन वैराजेन,
साम्ना प्रजापतिना देवतयाऽयुस्ते दीर्घायुत्वामाददेऽसौ॥

(७)

ॐ इममग्न आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण संशिशाधि।
माते वास्मा अदिते शर्मयच्छ विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत्॥१॥

विश्वकर्मा विश्वदेवो विश्वजिद् विश्वदर्शितः।
ते त्वा घृतस्य धारया श्रेष्ठ्याय समसूपत॥२॥

यतो वातो मनोजवा यतः क्षरन्ति सिन्धवः।
तासां त्वा सर्वासां रुचा अभिषिञ्चामि वर्चसा॥३॥

अमित्वा वर्चसाऽसिचं यज्ञेन पयसा सह।
यथासो मित्र वर्धनस्तथा त्वा सविता करत्॥४॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधत् समुद्रं व्यच सङ्गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥५॥

(८)

अपां यो द्रवेण रसस्तेनाहामिममऽमुमऽमुष्यायन—
मऽमुष्याः पुत्रं तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि ।
अपां य ऊर्मो रसस्तेनाहमिममऽमुमऽमुष्यायन—
मऽमुष्याः पुत्रमौजसे क्षत्रायाभिषिञ्चामि ।
अपां यो मध्ये रसस्तेनाहमिममऽमुमऽमुष्यायन—
मऽमुष्याः पुत्रं प्रजायै पुष्ट्यायाभिषिञ्चामि ।
अपां या यज्ञिया तनूस्तयाहमिममऽमुमऽमुष्यायन—
मऽमुष्याः पुत्रमायुषे दीर्घायुत्वायाभिषिञ्चामि ॥

(९)

ॐ निषसाद घृतवतो वरुणः पस्त्यास्वः सम्राज्याय सुक्रतुः ।
देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां,
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिसिञ्चामि ॥१ ॥
देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां
सरस्वत्या भैषज्येन वीर्यायान् नाद्यायाभिषिञ्चामि ॥२ ॥
देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां,
इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियैयशसे अभिषिञ्चामि ॥३ ॥

(१०)

कोऽसि कोनामासि कस्मैत्वा कायत्वा सुश्लोकाः सुमंगलाः सत्यराजान्,
रायेजातः सहसे वृद्धः क्षेत्राणां क्षत्रभृत्तमोवयोधाः,
महान्महित्वा संस्तम्भेक्षेत्रे राष्ट्रे च जागृहि ॥१ ॥

वरस्यतिलकं मार्जनंच

● तिलकं सशकुनम् : निम्नोक्तमन्त्रों से आचार्य वर को तिलक लगाये तथा दाहिनी कलाई में रक्षा सूत्र बान्धे । यथाः

नवकृत्व इन्द्रो राजा सविता त्वामभिषिञ्चतु।
मित्रोवायुर्वृहस्पति र्धाताक्षत्रं दधातु ते ।।१ ।।

अदितिस्त्वा सुष्वतु राजन्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते।
राज्याय महते ज्यानराजाय महते विश्वस्य भुवनस्याधिपत्याय समस्त्वाग्ने ।।२ ।।

पुनमार्जनं वरस्य : ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसर्वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां, सरस्वत्या वाचा यन्तुर्यन्त्रेणेममुमऽमुष्यायणममुष्याः, पुत्रमग्ने सम्राज्येनाभिषिञ्चामि इन्द्रस्य सम्राज्येनाभिषिञ्चामि ।।१ ।।

● **अथ वध्व :** वधू के हाथ में सुपारी देकर निम्न मन्त्रों से अभिषेक करें :

ॐ चतुश्शिखण्डा युवतिः सुपत्नी विनीयमाना सौभगाय।
धृतं दुहानामदितिर्जनाय सामे ध्वक्ष्व सर्वान् भूतिकामान् ।।१ ।।
उच्छ्रयस्व वनस्पतेर्वर्ष्मन् पृथिव्यामधि, समिती मीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे।
समिद्धस्यश्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्मवन्वाना अजरं सुवीरम्।
आरे अस्मद मति बाधमान उछ्रयस्व महते सौभगाय ।।२ ।।
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाऽभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अध्न्येयं स वर्धतां महते सौभगाय ।।३ ।।

● **सशकुनानयनं तिलकम् :** आचार्य निम्नमन्त्रों से वधू को तिलक तथा वाम कलाई में रक्षा सूत्र बान्धेः

यस्मैत्वां सुकृतो जातवेदा, उलोंकमग्ने कृणवस्योनम् ।
अश्विनं सुपुत्रिणं वीरवन्तं, गोमन्तं रयिन्नशते स्वस्ति ॥

यजमानाय : निम्नमन्त्र से यजमान को हाथ में नारियल देकर अभिषेक करें :

ऋ० ८/ ३१/ १५/१६/१७/१८

मक्षु देव वतो रथशूरो पृत्स्वका स्वचित् ।
देवानां य इन्नमनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवन् ॥१ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्रायोशन्नयोषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवन् ॥२ ॥
असदत्र स्ववीर्यमुत त्यदश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्ममनो यजमान न इयक्षत्यमीदयज्वनो भुवन् ॥३ ॥
न यजमान ऋष्यसि न सोन्वान न देवयोः ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदय ज्वनो भुवन् ॥४ ॥

धनञ्जयः सहमानः पृतन्यो अग्नि एष ऊर्जं यजमानाय देहि ॥५ ॥
विश्वा पृतना सहमानः सहोभिरन्नं नो देहि बहुधाविरूपं यत्रजा अनुजीव कामाः ॥६ ॥ ● **यजमान तिलकं सशकुनं :** निम्नमन्त्र से यजमान को तिलक करें तथा रक्षा सूत्र बान्धें ।

यानि दक्षिणानिच्छन्दींषितान्युत्तराणि कुर्याद् यजमानो,
लोके एतानि यानि दक्षिणानि भ्रातृव्यालोके ।
उत्तराण्युत्तरमेव यजमानोऽयजमानाद्,
भ्रातृव्यात्करोत्युत्तरो हि यजमानोऽयजमानात् ॥

॥इत्याभिषेक प्रकरणम् ॥

॥कन्यादान प्रकरणम् ॥

॥ज्ञातव्यविषय ॥

मन्त्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर, होय वेगही नास ॥

प्रस्तुत प्रकरण को गति देने से पूर्व हमें किसी सुकवि का उपर्युक्त दोहा स्मरण हो आया । प्रायः देखने में आता है कि इस मंगलमय अवसर पर मदिरापान के दुर्व्यसन के फलस्वरूप लग्नसमय की उपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, जिस कारण विवाहोपरान्त प्रतिकूल परिणाम निकलते हैं । हमारा संकेत साधारणतया दोनों पक्षों की ओर किन्तु विशेष रूप से वर पक्ष की ओर है । लग्न जांचने वर पक्ष ही जाता है और असावधानी अर्थात् लग्न समय के प्रति अवहेलना भी प्रायः इसी पक्ष की ओर से बरती जाती है जो अवांच्छनीय और हानिकारक है । महर्षि वसिष्ठ का कथन है : कश्चिद् गृहाश्रम समो न परोऽस्ति धर्मः ।
सोऽपिस्थित सगुणवृत्तयुतामङ्गनासु ॥ उद्वाह लग्न वशतो गुणयुतलब्धितासां तथाविध सुलग्नमतः प्रवच्मि ॥ विस्तार में न जाते हुए संक्षेप में— 'विवाह संस्कार कर्म' यदि लग्न समय विचारानुरूप सम्पन्न किया जावे तो स्त्री के गुणों की उत्तरोत्तर सद्वृद्धि होती है ॥ हमने अपना कर्त्तव्य (धर्म) पूरा किया आगे वर पक्ष की इच्छा और सर्वोपरि ईश्वरेच्छाबलीयसीतिशम् ॥

॥कन्यादान माहात्म्यम् ॥

अश्वमेध सहस्रस्य, वाजपेये शतस्य च ।
एक कन्या प्रदानेन, फलमाप्नोतिनः कलौ ॥१ ॥

भाषा : एक हज़ार अश्वमेधयज्ञ तथा एक सौ वाजपेय यज्ञ करने का जो फल होता है, वह फल कलियुग में एक कन्यादान करने से स्वतः प्राप्त होता है ॥१ ॥ (सूतसंहितातः)

अन्य चः भूमिदानं वृषोत्सर्गो, दानं गज सुवर्णयोः।
उभय तो वदना गौश्च, तुलाया दानमुत्तमम् ॥१ ॥
कन्यादानं जीवदानं, शरणागत पालनम्।
वेददानं महाराज, महादानानि वैदश ॥
तत्रापि च महाबाहो, कन्यादानमुत्तमम्।
कन्यादानात्परंदानं, न भूतं न भविष्यति ॥मार्तण्डतः ॥

भाषा : [१]भूमिदान, [२]वृषोत्सर्ग (मृत पुरुषके नाम पर दागकर सांड छोड़ना), [३]हाथीदान, [४]स्वर्ण, उभयतो [५]मुखीगाय, [६]कन्यादान, [८]जीवनदान, [९]शरणागत रक्षा और [१०]वेददान— यह दस महादान हैं ॥१ ॥ उक्त दस महादानों में कन्यादान सर्वोत्तम दान है। कन्यादान से परम दान न हुआ है और न होगा ॥

'विधिवत् कन्यादानमश्वमेध समं कलौ' ॥श्री गोविन्दराज ॥

भाषा : कलियुग में विधिपूर्वक किया जाने वाला कन्यादान अन्य युगों के अश्वमेध के समान है ॥
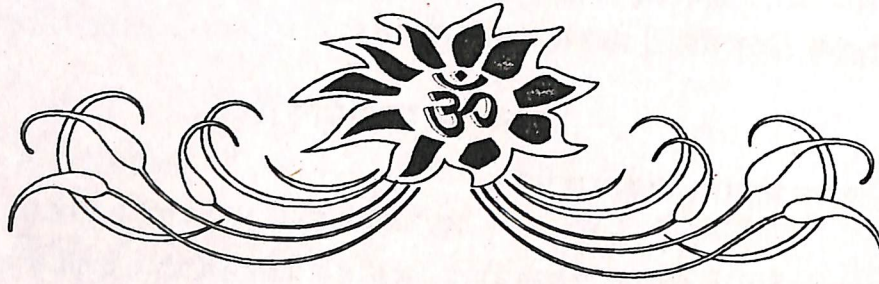
॥ पाणिग्रहणम् ॥

॥ अत्रादौ कन्यादान सङ्कल्प निमितं शंख पूजनम् ॥

- **सव्येन :** दायें यज्ञोपवीत करके, प्रणीत पात्र में जल, तिल, अक्षत, गन्ध तथा विष्टुर डालकर निम्नमन्त्र युग्म से तीन पुष्प डालें । यथा :

संव्वा सृजामि हृदयं संसृष्टं मनो अस्तुवः ।
संसृष्टा तन्वः सन्तु वः संसृष्टा प्राणो अस्तुवः ॥१ ॥

संय्यावः प्रियास्तनवः सम्प्रिया हृदयानिवः ।
आत्मा वो अस्तु संप्रिया संप्रियास्तनवोमम ॥२ ॥

- पुनः अभिमन्त्रितजल से मार्जन करते हुए शंख को जीवादान दें :

अश्विनोः प्राणस्तौ ते प्राणं दत्तान तेन जीव,
मित्रः वरुणयोः प्राणस्तौते प्राणं दत्तां तेनजीव,

बृहस्पते प्राण स ते प्राणं दत्तां तेन जीव ॥

- पुनः अक्षत समेत दो दर्भकाण्ड हाथ में लेकर शंख पूजार्थ पृच्छा सम्पादनः ॐ गायत्र्यै नमः ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३ ॥ ॐ तत्सदद्यतावत मासोत्तमेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे शंखस्य पाञ्चजनयस्य (यजमान कहे) कन्यादान निमितं पूजनमर्चामहं करिष्ये (आचार्य कहे) ॐ कुरुष्व ।

शन्नोदेवीरभिष्टये आपो भवन्तुपीतये। शँय्यो रभिस्रवन्तु नः ॥१ ॥

लाजाश्च कुंकुमं चैव, सर्वोषधिसमन्वितम्।
दर्भाङ्कुरं जलं चैव, पञ्चाङ्ग पाद्य लक्षणम् ॥२ ॥
शंखाय पाञ्चजन्येदं पाद्यं नमः ॥पाद्य शेषं निवार्येत् ॥

अथोर्घ्यम्— शन्नोदेवी० ॥आपः क्षीरं कुशग्राणि, घृतं च दधितण्डुलाः।
यवाः सिद्धार्थकाचैव, ह्यर्घ्यमष्टांगमुच्यते ॥

शंखः पाञ्चजन्यः इदं ओर्घ्यं नमः ॥

गन्धम् : शंखाय पाञ्चजन्याय समालभनं गन्धं नमः ॥गन्धलेपं निवार्येत् ॥

अथान्तेऽर्घपुष्परक्षासूत्रं च। निम्न मन्त्र से शंख पर पुष्पार्पण करें :

अग्नि ऋषि पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ॥ शंखाय पाञ्चजन्याय अर्घो नमः, पुष्पं नमः ॥ शंखाय पाञ्चजन्येदं वासो नमः, कङ्कणं नमः ॥

॥अथाग्नि कृत्यम् ॥

उदग्रान्दर्भानास्तीर्य तेषूपविशतः प्राङ्मुखा प्रतिगृहीता, सामात्यः प्रत्यङ्मुखः प्रदाता ॥ (लौ० गृ० का २५/सू० २)

भाषा : कन्यादान के अवसर पर, उत्तर दिशा की ओर जिन का सिरा हो इस प्रकार दर्भाओं को बिछा कर, उन पर पूर्वाभिमुख करके वर अपने सम्बन्धियों के साथ एवं पश्चिम की ओर मुख करके अपने सम्बन्धियों सहित प्रदाता अर्थात् कन्यादान करने वाला (यजमान) बैठे ॥

मध्ये प्राग्रोदग्रान्दर्भानास्तीर्य, तेषूदकं सन्निधाय, ब्रीहियवान्वोप्य, दक्षिणतोङ्ङासीन, ऋत्विगो उपयमनं कार्येत् ॥ (लौ० २५/३)

भाषा : (और उस सम्बन्ध को) एकत्रित लोगों के सन्मुख कहे। पुनः दाता से 'कन्या देता हूँ' और वर से 'ग्रहण करता हूँ'— ऐसा तीन-तीन बार दोनों से कहलवा कर इस सम्बन्ध को घोषित करवाये ॥

एतद्वा सत्यमित्युक्त्वा 'समानः वा०' 'समवो मनांसि' इति ऋत्विगुभौसमीक्षमाणौ जपति ॥लौ० १५/५ ॥

भाषाः तुम्हारा यह कथन सत्य है ऐसा कहकर आचार्य— 'समानः वा०' 'संवोमनांसि०'— ये दो मन्त्रोच्चारण करे ॥

॥अथ विधिः ॥

'लग्न समयं विचार्य पिता दक्षिण जानौ कन्यां गृहीत्वा'

भाषा : लग्न समय विचार कर, यजमान कन्या को अपने दक्षिण घुटने पर बिठा कर (कन्यादान का कृत्य सम्पादन करे) पुनः आचार्य लग्न रेखा स्थित दो दर्भाङ्कुर उठा कर तथा खड़े होकर यजमान को सम्बोधित कर कहे :

ॐ भगवन् ! कन्यां ददात्वस्मै भवान् ॥इति त्रिरावेदयत् ॥

भाषा : हे यजमान ! आप कन्या को इस वर के लिए देवें ॥ऐसा तीन बार कहे ॥

- 'भगवन्' शब्द पर दर्भाङ्कुर से यजमान् के सिर का स्पर्श, 'कन्यां' पर कन्या के 'ददातु' पर पुनः यजमान् के तथा 'अस्मै' पर वर के और 'भवान्' पर फिर यजमान के सिर का स्पर्श करें । फिर आचार्य वर को सम्बोधित कर कहे :

ॐ भगवन् ! कन्यां प्रतिगृहणा त्वस्माद् भवान् ॥३ ॥

भाषा : हे वर ! आप कन्या को इस (यजमान) से ग्रहण करें ॥३ बार ॥

- 'भगवन्' शब्द पर वर के सिर का स्पर्श, 'कन्या' पर कन्या का, 'प्रतिगृहणातु' पर पुनः वर के, 'अस्मात्' पर यजमान के और 'भवान्' पर पुनः वर के सिर का स्पर्श करें ॥
- आचार्य के इस आदेश पर यजमान् ओङ्कार का उच्चारण करके वर से कहे :

ॐ भगवन् ! कन्यां ददनि ते ॥ इति दातारं जल्पयेत् ३ ॥

भाषा : भगवन् ! (हे वर !) मैं आपको यह कन्या देता हूँ ॥ स्वीकार करें ॥

- उपरोक्त वाक्य आचार्य तीन बार यजमान से कहलवाये । इसके उत्तर में वर से निम्न वाक्य कहलवाये : **ॐ भगवन् ! कन्यां प्रतिगृहणामि ॥३ ॥**

भाषा : भगवन् ! मैं कन्या को ग्रहण करता हूँ ॥ तीन बार ॥

● वर के ऐसा कहने पर यजमान् पूर्व पूजित शंख में [१] दूर्वा, अक्षत, फल, पुष्प, चन्दन तिल, कुशा, जल तथा दक्षिणादि डालकर तथा शंख कन्या के हाथ में देकर तथा नीचे अपनी अञ्जुलि रखकर स्वयं (अथवा आचार्य द्वारा) निम्न वाक्यों का उच्चारण कर संकल्प क्रिया पूर्ण करें :

दाताऽहं वरुणो राजा, द्रव्यमादित्यदैवतम्।
विप्रोऽसौ विष्णु रूपेण, प्रतिगृह्णात्वयं त्रिधि ॥
कन्यादानं महादानं, सर्वदानेषु दुर्लभम्।
तदद्य दैव योगेन, त्वं गृहाण वरोत्तमम् ॥

ॐ सावित्राणि सावित्रस्य देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः । तत्सदद्ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे श्री श्वेत वाराह कल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे, कलि प्रथम चरणे, जम्बू द्वीपे, भारत वर्षे, भरत खण्डे, आर्यावर्त्तान्तर्गत ब्रह्मवर्तैकदेशे, पुण्यप्रदेशे, द्विगर्त प्रांते, वर्तमाने (यथा नाम संवत्सरे)ऽमुकायने, महामाङ्गल्य प्रदेमासोत्तमेऽमुकमासेऽमुक पक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे अस्मिन्पुण्याहे, अस्या कन्यायाः, अनेनवरेण, धर्म, प्रजया, उभयोवंशवृद्ध्यर्थं यथा च गम पितृणां निरतिशयसानन्द ब्रह्मलोकमवाप्यादि, कन्यादानकल्पोक्त फलाऽवाप्तये अनेन वरेण अस्या कन्यायामुत्पादिष्यमाण सन्तत्या, दशपूर्वान् दशाऽपरान्, मां च एक विंशति पुरुषानुद्धर्त्तुं, ब्रह्मविवाह विधिना, श्री लक्ष्मीनारायण प्रीत्येचाऽमुक गोत्रोत्तपन्नामऽमुक नाम्नी-मिमां कन्यां सुस्नातांयथा शक्तयालङ्कृतां प्रजापति देवताकाममऽमुक गोत्रोत्तपन्नोऽमुक शर्मणे (वर्मणे) विष्णुरूपेण ब्राह्मणाय (वर्मणाय वाक्षत्राय) वराय पत्नित्वेन तुभ्यमऽहं सम्प्रददे ॥

'शंखस्य द्रव्ययुक्त जलेन सह कन्या हस्तं वरहस्ते दद्यात् ॥'

भाषा : शंख के द्रव्ययुक्त जलसहित कन्या का हाथ वर के हाथ में देते हुए यजमान् पुनः निम्न वाक्य कहेः **तुभ्यं दत्ता कुमारी धर्मे चार्थे कामेचत्वयेयं परिचरणीया ॥**

भाषा : तुझको दी गई यह कन्या धर्म, अर्थ, काम— इन पुरुषार्थत्रय में तुझसे सेवा लेने योग्य है ॥

● प्रत्युत्तर में आचार्य निम्नवाक्य वर से कहलवाये :

मह्यं प्रतिगृहीता वधूः धर्मे चार्थे कामे च मयेयं परिचरणीया ॥

(१) कन्यादान समारम्भे दाता शंखे समाददेत् । दूर्वाक्षत फलं पुष्पं चन्दनं जलमेव च ॥ (बृहत्पाराशर)

भाषा : अपने लिए ग्रहण की हुई यह वधू मुझ से पुरुषार्थत्रय में सेवा लेने योग्य है ॥

- फिर आचार्य कहे— एतद्वः सत्यम् ॥ (आपका यह कथन सत्य है ।)

- इसके उत्तर में वर-यजमान एक साथ कहें : एतन्नः सत्यम् ॥ (हमारा यह कथन सत्य है)

- इसके पश्चात् आचार्य कन्या को वर के दक्षिण भाग में बिठाकर वधू और वर को आदर्श (शीशे) में परस्पर मुख दर्शन कराते हुए निम्न मन्त्रों का उच्चारण करे :

समाना वा आकूतानि, समाना हृदयानिवा ।
समानमऽस्तु वो मनो, यथा वः सुसहाऽस्ति ॥१ ॥
सं वो मनांसि संव्रता, समुचितान्याकरत् ।
अमी ये विव्रताः स्थ, न तान् वः सन्न मयामसि ॥२ ॥

भाषा : हे वर-वधू ! तुम्हारे आकूतानि (अभिप्राय) समान हों, तुम्हारे मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा शुभ सहभाव होवे ॥१ ॥ तुम्हारे मनों को और व्रतों (संकल्पों) को समान करता हूँ, विरुद्धाचरण को दूर करता हूँ और फलतः सदाचार को स्थापित कराता हूँ ॥

॥इति पाणिग्रहण प्रसंगः ॥

* * *

॥अथ वरार्चनम् ॥

- ततो विष्टरं पाद्यर्घ्य मधुपर्कानां स्थापयेत् ॥१ ॥
षड्र्घ्याहा भवन्त्याचार्य ऋत्विग् वैवाह्यौ राजा प्रियः स्नातकेति।
अथैनमर्हन्त्यादौ च कर्मणौऽर्घ्यमुदकं सौषधं दर्भेति ॥२ ॥
कांस्ये चमसे वा दध्यासिच्य मधु च वर्षीयसा विधाय विष्टराभ्यां
परिगृह्य पाद्य प्रथमैः प्रतिपद्यन्ते ॥३ ॥ (लौ० गृ० कु० ३ सूक्त१)

भाषा : पुनः विष्टर, पाद्य, अर्घ्य तथा मधुपर्क अग्रिम क्रियार्थ स्थापित करें ॥१ ॥ ये छः पूजा के योग्य हैं— गुरु, यज्ञकर्ता, वर, राजा, वेद पढ़ा हुआ ब्रह्मचारी तथा उत्तम मित्र। इन छः पूजनीय पुरुषों में से आचार्य—यजमान द्वारा उपरोक्त प्रमाण से वर को सम्मानित करवाते हैं— अतः विवाह कर्म से पूर्व वरार्चन अनिवार्य है। जल, ओषधि और दर्भा— ये अर्घ्य के उपकरण हैं ॥२ ।। कांस्य या लकड़ी के पात्र में दही और मधु डालकर तथा बड़े पात्र से ढक कर, दो दर्भा के विष्टरों से ग्रहण कर मधुपर्क स्थापित करें। वर पूजन में यजमान प्रथम पाद्य फिर अन्य वस्तुएं समर्पण करते हैं ॥३ ॥

- वरके पूजन के लिए वर के समीप, यजमान के बैठ जाने पर आचार्य पूजा के उपकरण-पाद्यादि को यजमान के पास मंगवाकर, उस पाद्य को लेते हुए— वर निम्नमन्त्र से अनुमन्त्रित करे (आचार्य मन्त्रोच्चारण करवाये) यथा :

मयि दोहोसि विराजो दोहः पाद्यायै विराजो दोह मयीयेत्या ह्रियिमाणमनुमंत्रयते ॥

भाषा : हे जल ! तू प्रजापति का उत्तम सारमय पदार्थ है। तू मेरे पाद्य के लिए उपयुक्त हो। मैं तुझे प्रजापति के उत्कृष्ट रस रूप पदार्थ को देखूँ ॥

विष्टरोसि मातरसीदेति विष्टरमास्तीर्य तस्मिन्नुपविशति ॥

विष्टरोसि मातरसीद'— इस मन्त्र का उच्चारण कर आसन के ऊपर विष्टर बिछा कर, वर उस पर बैठ जावे ॥

विष्टरमासीनायैकैकं त्रिः प्राह। नैव भोरित्याह न मार्षीति ॥

भाषा : विष्टर पर बैठे हुए वर के लिए भेंट की जाने वाली एक-एक वस्तु का नाम ३/३ बार यजमान उच्चारण करे। वर को भो ! हे ! अरे ! आदि सम्बोधनों तथा उस का नाम लेकर न पुकारे ॥

॥अथ विधि ॥

यजमान विष्टर हाथ में लेकर वर से कहे (आचार्य कहलवाये) :

भगवन्! विष्टरो विष्टरो विष्टरः ॥ (महाराज ! यह विष्टर है) यजमान पुनः वर से कहे :

विष्णोर्महाराजस्येदमासनमास्यताम् ॥

भाषा : विष्णु रूप देव ! यह आसन है, आप इस पर बैठिए।

- फिर यजमान के हाथ से विष्टर लेकर वर अपने आसन के नीचे रखते हुए निम्न मन्त्र बोले : **विष्टरोऽसि मातरसीद ॥**

भाषा : हे विष्टरः तू विष्टर (आसन) है, अतः आसन के नीचे स्थिर हो ॥

॥अथ पाद्यम् ॥

- विष्टर पर वर के बैठ जाने पर आचार्य निम्नमन्त्र से पाद्यार्थ लिए जल को अभिमंत्रित करे।

शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्रवन्तुनः ॥

मन्त्रार्थ : दिव्य गुण सम्पन्न जल हमें सुखप्रद हों, यथेष्ट सुखदायक तथा पीने के लिए हों। नित्यसुख देने के लिए हमारे चारों ओर बहते रहें ॥

- पुनः अभिमंत्रित जल में निम्न पाद्य द्रव्यों का मिश्रण करें :

लाजाश्च कुंकुमं चैव सर्वोषधि समन्वितम् ।
दर्भाङ्कुरं जलं चैव पञ्चाङ्गं पाद्य लक्षणम् ॥

- लाजाएँ, केसर, सर्वौषधि और दर्भाङ्कुर युक्त अभिमंत्रित पाद्य पात्र आचार्य यजमान को सम्बोधित कर कहे : भगवन् ! पाद्यं पाद्यं पाद्यम् ॥

- पुनः यजमान पाद्य पात्र वर को देते हुए ३ बार कहे :

ओ३म् भगवन् ! पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ (पाद्य ग्रहण करें)

- फिर वर पाद्य ग्रहण करते हुए कहे : **भगवन् ! पाद्यं प्रतिगृहणामि ॥३ बार ॥**

- पाद्य पात्र को लेते हुए वर निम्न मन्त्र से पाद्य को अभिमंत्रित कर यदि वर [१]ब्राह्मण हो तो पहले दक्षिणपाद और यदि क्षत्रिय हो तो प्रथम वाम पाद धोये :

मयि दोहोसि विराजो दोहः पाद्यायै विराजो दोहमशीयेति ॥

भाषा : हे जल : तुम विशिष्ट दीप्ति 'दोह' नाम रस के सार रूप हो । अतः हे जल ! आप को ग्रहण करते हैं । किंच हे विराजोदोह ! अर्थात् अभिमंत्रित संस्कृत जल आप मेरे चरण के धोने योग्य हो ॥

- उपर्युक्त मन्त्रोच्चारण के पश्चात् वर पाद्यपात्र को दक्षिण हाथ में लेकर निम्न मंत्र से दक्षिण चरण धोये : **दक्षिण पादमवनेनिज, इदमहमस्मिन कुले ब्रह्मवर्चसं दधामि ।**

- निम्नमन्त्र से वामचरण धोये : **उत्तरं पादमवनेनिज, इदमहं मां मयि तेजो वीरान्नाद्यं प्रजां पशून ब्रह्मवर्चसं दधामि ॥२ ॥**

(१) ब्राह्मणो दक्षिणं पादं पूर्वं प्रक्षाल्येत्सदा । क्षत्रादि प्रथमं वामं इति धर्मानुशासनम् ॥ (पदम पुराणतः)

॥अथोर्घ्यम् ॥

पुनः निम्नमंत्र से जल को अभिमंत्रित कर और अर्घ्यद्रव्य मिलाकर आचार्य, यजमान द्वारा अर्घ्य क्रिया सम्पादन कराये :

शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये । शँय्यो रभिस्त्रवन्तुनः ॥
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं च दधितण्डुलः । यवाः सिद्धार्थकाचेति ह्यर्घ्यमऽष्टांगमुच्यते ॥

- पाद्य पात्र यजमान को हाथ में देते हुए आचार्य निम्न वाक्य कहे :

ओ३म् भगवन् ! अर्घ्यं अर्घ्यं अर्घ्यम् ॥

- आचार्य के हाथ से अर्घ्य पात्र लेकर यजमान वर से निम्नवाक्य ३ बार कहे :

भगवन्नर्घ्यं ददानि ते ॥३ बार ॥

- प्रत्युत्तर में वर अर्घ्य पात्र यजमान से लेते हुए निम्नवाक्य ३ बार कहे :

भगवन् ! अर्घ्यं प्रतिगृहणामि ॥तीन बार ॥

- पाद्य पात्रवद्ग्रहीत्वा । आपो हिष्ठेति तिस्त्रिभिश्शिरसि पवित्रेणापः क्षिपेत् ॥

भाषा : पाद्य पात्रवत् अर्घ्य पात्र हाथ में लेकर, वर निम्नमन्त्रोच्चारण करते हुए तीन बार कुशा पवित्र से अर्घ्य जल को अपने सिर पर डाले । यथा :

ओ३म् आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१ ॥
ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः । उशतीरिव मातरः ॥२ ॥
तस्मा अरङ्गमाम वा यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जन यथा च नः ॥३ ॥

भाषा : हे जल देव आप सब सुखों के दाता हो, आप हमें बल दो जिससे हम परम सुख को प्राप्त हों ॥ जैसे मातायें अपने पुत्रों को स्तनरस पान कराती हैं वैसे ही आप हमें परम मंगलमय रस का भागी बनाओ ॥ जिन पापों के नाश के लिए आप हमें प्रेरणा देते हैं— हे जलो ! आप हमें वह बल प्रदान करो ॥३ ॥

- **'पवित्रं निवार्य'** पवित्र निकाल कर यजमान पहले वर को पश्चात् कन्या को निम्न वाक्यों से तिलक लगायेः **विष्णवे महाराजाय समालभनं गन्धो नमः ॥ गन्धलेपं निवार्येत् ॥**

- **पुनः** विष्णु पत्न्यै दुहित्रे लक्ष्म्यै समा लभनं गन्धो नमः ॥ गन्धलेपं निवार्येत् ॥ एवं अर्घो नमः, पुष्पं नमः, धूपो नमः, दीपं नमः ॥

- **'पुनः यज्ञोपवीतं वासोनमः'** इस स्थल पर खड़े होकर सपत्नीक यजमान निम्न मन्त्र से वर को यज्ञोपवीत धारण कराये :

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्चशुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञो पवीतमसि यज्ञस्य त्वा उपवीतेन उपनह्यामि ॥

भाषा : हे द्विज ! यह प्रजापति का अत्यधिक पवित्र यज्ञोपवीत प्राचीन काल से स्वाभाविक उत्कृष्ट एवं आयुवर्धक है । इसे तू धारण कर । यह स्वच्छ यज्ञोपवीत तेरे लिए बल और तेज का उत्पादक बने । हे ब्रह्म सूत्र ! तू यज्ञ के निकट विशेषत्त्व को प्राप्त हुआ है ॥ हे द्विजः मैं तुझको यज्ञोपवीत द्वारा प्रभु उपासना के लिए बान्धता हूँ ॥

- फिर बैठे जाने पर यजमान वर को वस्त्र (भाषायाः वस्त्रवास) भेंट करे ।

विष्णवे महाराजायेदं वासो नमः ॥

- पुनः हाथ जोड़कर यजमान-विष्णुरूप वर तथा लक्ष्मी रूपा कन्या से निम्न प्रार्थना करें : **विष्णोः सपत्नीकस्यार्घ्यदानाद्यर्चन विधिः सर्वः परिपूर्णाऽस्तु ॥ आचार्य कहे—** एवमऽस्तु ॥

॥अथ मधुपर्कम् ॥

मधुपपर्कं विदुस्त्र्यङ्गं; याज्ञिक यज्ञ कर्मणि ।
माक्षिकं च घृतं चैव, सुजातं शोभनं दधि ॥

भाषा : यज्ञ, यागादि मंगल कृत्यों में मधुपर्क—शहद, घी और दही, ये पवित्र वस्तुऐं मिश्रित कर मधुपर्क बनाया जाता है जो अनेक रोगों का नाशक है ॥

- इस के सेवन से मन, वाणी और शरीर में पवित्रता आती है । आचार्य कांस्य पात्र में [१] एक भाग घृत, दो भाग मधु और एक भाग दही मिलाकर निम्नमन्त्र से मधुपर्क बनाये :

ॐ सावित्राणि सावित्रस्य देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे
ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥

- फिर दोनों विष्टरों (एक ऊपर, एक मध्य में और एक नीचे) से संयुक्त मधुपर्क के पात्र को लाकर आचार्य यजमान को सम्बोधित कर कहे :

ॐ भगवन् ! मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः ॥

- फिर आचार्य से मधुपर्क ग्रहण कर यजमान वर से कहे :

ओ३म् भगवन् । मधुपर्कं ददानि ते ॥तीन बार ॥

- पुनः वर, यजमान से निम्नमन्त्र से मधुपर्क ग्रहण करे :

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां
भगवन् ! मधुपर्कं प्रतिगृहणामि ॥तीन बार ॥

भाषा : सविता देव की अनुज्ञा में वर्तमान रहने वाले अश्विनी कुमार देवताओं के बाहुओं से और पूष्णा देवता के हाथ से मैं मधुपर्क ग्रहण करता हूँ ॥

विष्टरोऽस्यऽन्तरिक्षमधि विश्रयस्वेति वर्षिष्ट पात्रस्योपरिस्थित विष्टरमुत्क्षिपति विष्टरमऽवकृष्य। उरुत्वेति अपसार्य ॥

- ढके हुए मधुपर्क पात्र के ऊपर-नीचे स्थित विष्टरों में से ऊपर का विष्टर खोल कर वर एक ओर फैंके फिर निम्नमन्त्र से मधुपर्क का ढ़क्कना उठाये :

उरु त्वा वाताय

- **'पुनः तच्चक्षुरित्यवीक्ष्य'** पुनः ढ़का हुआ पात्र उठाकर निम्नमंत्र बोल कर भली प्रकार मधुपर्क का अवलोकन करे (देखे)।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतं, श्रृणुयाम शरदः शतम्,
प्रब्रुवाम शरदः शतं, अदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥

मन्त्रार्थ : इन्द्रादि देवताओं से स्थापन किया हुआ, संसार का नेत्र, चमकता हुआ उदय होता है— ऐसे भगवान भास्कर की कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहें, सौ वर्ष तक सुनें, बोलें, सौ वर्ष तक गरीबी से दूर तथा सौ वर्ष तक स्थिर रहें ॥

- **'पृथिव्यस्त्वेति मधुपर्क पात्रं विष्टरेऽधः स्थिते भूमौ निधाय'** इसके पश्चात् वर निम्न मंत्र बोलकर मधुपर्क के पात्र को प्रथम स्थापित किये हुए कुश विष्टर पर रख दे :

पृथिव्यस्त्वा नाभौ साधयामि ॥

मन्त्रार्थ : हे भूदेवी ! मैं इस मधुपर्क को तुम्हारी नाभि पर स्थिर करता हूँ ॥

- **'मधुवातेति तिसृभिः प्रदेशिन्या प्रदक्षिणामालोडयति'** तत्पश्चात् 'मधुवात' आदि निम्न तीन ऋचाओं को बोलते हुए वर मधुपर्क को हिलावे :

मधुवात ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नासन्त्वौषधिः ॥१ ॥
मधुनक्तमुतोषसो मधु पथ पार्थिवं रजः। मधुद्यौस्तुनः पिता ॥२ ॥
मधुमानो वनस्पति र्मधुमामऽस्तु सूर्यः। माधवीर्गावो भवन्तु नः ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : सत्य अथवा यज्ञ के चाहने वाले लोगों के लिए वायु सुखकारक हो। समुद्र मधुररस बरसाने वाले हों, हमारे लिए औषधियां मधुर हों ॥२ ॥ रात्रि का प्रथम प्रहर और प्रभात वेलायें हमारे लिए सुखकर एवं शान्ति प्रद हों। पृथिवी की धूली हमें आनन्ददायी हो, द्यौलोक पिता के समान हमारा पालक एवं सुखकारी हो ॥२ ॥ वनस्पतियां हमारे लिए बलवर्धक हों तथा मधुरता से सम्पन्न हों, सूर्य सुखकर तथा गाऐं मधुर रस पान कराने वाली होवें ॥३ ॥

- **इसके पश्चात् उस मधुपर्क पात्र में से वर** अनामिका **अङ्गुली से थोड़ा-२ लेप यथा निर्दिष्ट दिशा में निम्नमंत्र बोलते हुए छिड़के वा आचार्य उक्त क्रिया सम्पन्न कराये :**

वस्वस्त्वग्निराजानो भक्षन्तु इति पूर्वतः॥ पूर्व दिशा में ॥
पितरस्त्वा यमराजानो भक्षन्तु इति दक्षिणतः ॥दक्षिण दिशा में ॥
रुद्रस्त्वा सोम राजानो भक्षन्तु इति पश्चिमतः ॥पश्चिम दिशा में ॥
आदित्यस्त्वा वरुणराजानो भक्षन्तु इत्युतरतः॥ उत्तर दिग्भाग में ॥
विश्वेत्वादेवा बृहस्पति राजानोभक्षन्तु इत्यूर्ध्वतः ॥ऊपर की ओर ॥

मन्त्रार्थ : हे मधुपर्क ! वसुदेवता जिनका राजा अग्निदेव है वह तुझे भक्षण करें। इसी प्रकार अन्य मन्त्रों का अर्थ समझें ॥ पुनः आचार्य वर से निम्नमन्त्र उच्चारण करवायेः यन्मधुनो मधुव्यस्य परमन्नाद्यं रूपं, तेनाऽहं मधुव्यस्य परमस्यान्नाद्यस्य परमान्नादो मधव्यो भूयांस त्र्यै विद्यायै यशोसि, श्रियै यसोसि, यशसे ब्रह्मणो दीप्तिरसि इति ॥

सत्य श्रीः (अंगूठे तथा कनिष्ठिका अङ्गुली द्वारा मधुपर्क-वर भक्षण करे)
यशः श्रीः (अङ्गूठे तथा अनामिका " " " ")
मयि श्रीः (अंगुष्ठ और मध्यमा " " " ")
श्रीः श्रयताम् (अंगुष्ठ तथा तर्जनी " " " ")

- मधुपर्क उक्तरीति से भक्षण करने के पश्चात् जो शेष रहे वह वर अपने सहयोगी मित्र को देवे या स्वयं ही सारा पी जावे अथवा किसी शुद्ध स्थान में रखा जावे ॥ इसके बाद आचार्य यजमान को वर के आचमनार्थ जल देते हुए कहेः **ॐ भगवन्। आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्।** यजमान जल पात्र लेकर वर से कहे : **विष्णवे महाराजाय आचमनीय नमः** ॥ यजमान के इस निवेदन पर वर अपने दक्षिण हाथ की हथेली में जल लेकर तथा निम्न मन्त्र पढ़ कर पी जावे : **अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा** ॥ (हे आचमन् ! तू अमृतमय मधुपर्क का आच्छादन है अतः मेरे लिए मंगलकारी हो ॥) **ततो यजमानेणगौर्गौर्गौरिति पाठः। अत्र वर यजमानाभ्यां तृणच्छेदनमाचारोनतु विधिः एतदेव पद्धितिषु ॥ ततो वरस्तृणं यजमान सह ग्रहीत्वाऽग्रि मन्त्रं पठेत् ॥**

भाषा : यजमान द्वारा इस स्थल पर 'गौः गौः गौः' यह तीन बार कहलाना। यहां दोनों यजमानों का तृणच्छेदन आचार है विधि नहीं। पद्धतियों में वर यजमान के साथ तृण पकड़ कर अगला मन्त्र पढ़े। यथाः

यजमान— भगवन्! गौर्गौर्गौः ॥ प्रत्युत्तर में आचार्य वर से कहलवाये।
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानामृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितेषु जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ ॥ऋ० ८/१०१/१५
सूर्यवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम:।
अद्धि तृणमध्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ऋ०१/१६४/४० ॥

भाषा : श्रीमहादेव जी नन्दिकेश्वररूप कर, ऋषियों से भयभीत हुए गौ के गर्भ द्वारा प्रकट हुए अतः रुद्रों की माता है। देव-दानवों को समुद्र मंथन द्वारा श्रांत हुओं को देखकर भगवान् विष्णु ने समुद्र मंथन द्वारा गौ उत्पन्न की अतः विष्णु और वसुओं के अंश भूत होने से —वसुओं की पुत्री हुई। नारायण की पुत्री होने से (नारायणद्वादशादित्येतिश्रुते) आदित्यनाम देवों की भगिनी हुई। अमृत दुग्ध की नाभि (उत्पतिस्थान) है अतः मेरे हाथ से अवध्य है ॥१ ॥

- हे अघ्न्ये ! कभी नाश न करने योग्य गौ माता ! तू सुलभ, सामान्य एवं सात्विक घास रूपी भोजन खाती है किन्तु तू दूध, घृतादि अमूल्य धन और परोपकाररूपी यश से युक्त है, इस कारण तू सदा भगवती अर्थात् यश की स्वामिनी बनी रह। है गौमाता ! तू सबको इस प्रकार से सुख प्रदान करती है। अतः तू चारों ओर विचरण करती हुई घास खा और शुद्ध जल पी ॥२ ॥
- पुनः यजमानादि सम्बन्धि वर्ग की ओर देखते हुए वर निम्नवाक्य आचार्य की सहायता से बोले : **ओ३म् उत्सृज तृणान्यत्तु उद्धृत्योत्सृजेत् ॥**

वाक्यार्थ : हे सम्बन्धी लोगो ! गाय को स्वच्छन्द करो ताकि यह घास खाये और हमें पुष्टि प्रदान करे ॥

॥इति वरार्चनादि विधि सम्पूर्णं जगदम्बार्पणमऽस्तु ॥

॥गाङ्गोदकम् ॥ (भाषायाः गंगावाँय)

शमीशाखा पलाशी च, मन्त्रश्च उदक पूर्णम्।
चतुर्विधं च यत्पूतं, तच्च गाङ्गोदकं स्मृतम् ॥१ ॥
सर्वौषधीर्भिः संयुक्ताः, शुष्का आमलका त्वचा।
स्नाने माङ्गलिके प्रोक्ता, अलक्ष्मीनोदना बुधैः ॥२ ॥

छन्दार्थ : शमी (कीकर, सेम, धान, उड़द, मसूर, चनादि) वृक्ष की शाखा, पलाशी (पत्ता) मन्त्र तथा जल इन चार प्रकार की वस्तुओं से जो पवित्र किया हुआ है, वह गंगोदक कहलाता है ॥१ ॥ केवल अभिमंत्रित जल ही नहीं वरन् उसमें सर्वोषधियों तथा आँवले आदि के छिलके मांगलिक कार्यों में स्नानार्थ प्रयोग करने से स्थान, पद या शक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठता प्रदान करने वाला होता है ॥२ ॥

- **'अनृक्षरा इत्युदकमानीय'** अर्थात् किसी व्यक्ति को किसी निकटस्थ नदी से कन्या स्नानार्थ जल लाने के लिए भेजा जाये और उसके प्रस्थान के समय आचार्य निम्न मंत्र का उच्चारण उपस्थित सम्बन्धी वर्ग से करावे वा स्वयं बोले :

अनृक्षरा ऋज्वः सन्तु पन्था, येभिः सखायो यन्तिनो वरेयम्।
समर्यमा सम्भगो नो निनीयात्, सञ्जास्पत्यं सुयममऽस्तु देवाः ॥

मन्त्रार्थ : हमारे सम्बन्धी लोग जिन मार्गों से गंगादि जैसे श्रेष्ठ जलाहरण स्थानों को गये हैं, वे मार्ग निष्कण्टक, सरल एवं सुखकर होवें । हमारे सम्बन्धीजनों को अर्यमा (सूर्यदेवता) तथा भगः (भगदेवता—चन्द्रमा, शिव) भली प्रकार अभीष्ट स्थान पर ले जावें । हे देवाः ! (सूर्यादिदेवताओ) आप की कृपा से (जः पत्यं) वर-वधू का यह विवाह सम्बन्ध (सुयममऽस्तु) भली प्रकार पूर्णता को प्राप्त हो ।

- **वधूपक्षीय कन्यायाः हस्तेदत्वा, कन्यां स्नानमण्डपं नीत्वा चतुष्पादेभद्र पीठे संस्थाप्य 'शन्न' इति मन्त्रेण स्नापयेत् ॥** (इसके बाद) गांगोदक वधू पक्ष की कन्या के हाथ में देकर, स्नानागार में कन्या को ले जाकर, अश्मचूर्ण से भूमि पर पीठ रेखा बनाकर तथा ऊपर चतुष्पाद मंगल पीढे पर बिठाकर 'शन्न आपो' इस मंत्र से स्नान करायें :

ओ३म् शन्न आपो धन्वन्याः, शन्नः सन्तु अनूप्याः ।
शन्नः समुद्रिया आपः शमु, नः सन्तु या इमाः ॥

मन्त्रार्थ : हमारे लिए (धन्वन्याः आपः) मरुभूमि में उत्पन्न जल सुख कर होवें तथा (अनूप्याः) जल प्रधान देशों में उत्पन्न जल (शन् नः सन्तु) हमारे लिए शान्ति दायक होवें । (समुद्रिया आपः) समुद्रोत्पन्न जल (शन् नः) हमारे हेतु कल्याण वर्धक होवें तथा तडागादि कुंओं का जल और जो ये जलाहार द्वारा लाये गये जल हैं वे हमारे लिए मंगलकारी होवें ॥ स्नान के पश्चात् : (आचार्य निम्नमंत्र बोलें)

- **या आकृन्तन् या अवयन् या अतन्वत याश्चदेवीरन्तामभितोऽततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसा संव्ययन्त्वाऽयुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥**

- **'इत्याहतं वासः परिधाय'** उपर्युक्त मंत्र से पति की ओर से दिया हुआ नवीन वस्त्र कन्या को पहनाया जाये ।

मन्त्रार्थ : हे आयुष्मति कन्ये ! तू इस वस्त्र को धारण कर ले । जिन देवियों ने इसे काता है, जिन्होंने बुना है, जिन्होंने ताना है और जिन्होंने इसके दोनों किनारों को गांठा है—वे सारी देवियां तुझे दीर्घायु करें तथा वृद्धावस्था तक तू इस वस्त्र को ओढ़ती रहे ॥

- **आशासानेत्यन्तरतो मौञ्जेन दर्भेण योत्क्रेण वा कन्या स्वयं सन्नह्यति ॥ वधूरिमं मंत्रं वाचनीय मौञ्जीं गृह्यमाना ॥**

भाषा : 'आशासानः' इस निम्नोक्त मन्त्र को बोलते हुए वधू अधोवस्त्र को मुञ्ज अथवा दर्भा की रस्सी से बान्धेः

आशासनः सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । अग्नेरनुव्रताभूत्वा सन्नह्ये सुकृतायकम् ॥

मन्त्रार्थ : शुभ उद्देश्य के लिए आवाहनीय आदि अग्नि की परिचरणशीला होकर मैं प्रसन्न मानसत्व सौभाग्य, सन्तान तथा (रयिम्) धन को चाहती हुई बन्धन को बान्धती हूँ ॥

● पुनः कन्या को यज्ञमण्डप में लाया जावे उस समय आचार्य निम्नमन्त्रों का उच्चारण करे :

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करत्। यथेयमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥१ ॥
पूषा त्वेतो नयतु हस्तं गृह्याश्विनौ त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृह पत्नी यथा सो वशिनी त्वं विदथेमां वदासि ॥२ ॥

मा विदन् परि पन्थिनो ये आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमऽतीतामऽपद्रवन्त्यरातयः ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : हे कन्ये ! मैं तुझे इस पिता के घर से मुक्त करता हूँ, (अमुतः) उस पति के घर से नहीं अपितु उस पति के घर से युक्त, तुझ अच्छे प्रेम में बन्धी हुई को, सम्बन्धयुक्त करता हूँ। जिस प्रकार यह कन्या अच्छी सन्तान वाली और सौभाग्यवती होवे, हे मीढ। (मूत्रोत्सृष्टि करने वाला) इन्द्र देव आप ऐसा करो ॥१ ॥ हे कन्ये ! इस स्थान से तुझको (पूषा) सूर्यदेवता हाथ पकड़ कर ले जावे, अश्विनी कुमार देवता तुझको रथ द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर ले जावें तथा सानन्द पहुँचा आवें, वैसे क्रम से तू पति गृह को जा। जिस प्रकार तू घर की स्वामिनी होवे, वैसी बन, घर के लोगों को तू अपने सद् व्यवहार से वश करने वाली हो, तू सदा धर्म एवं ज्ञान सम्बन्धी वचन बोला कर ॥२ ।। **हे कन्ये ! जो चोर तस्करादि दुष्ट लोग मार्ग में वर-वधू को कष्ट पहुंचाते हैं, वे तुझे न देख पावें। तू सारे कठिन मार्गों को सुख साधनों से पार करे और शत्रु लोग अशक्त होकर दूर भाग जावें ॥३ ॥**

॥इति गांगोदकं वाससः कर्म च ॥
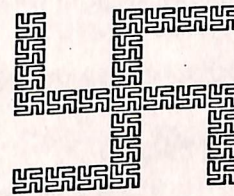
॥अथ माङ्गल्यमाला कर्मम् ॥

- **यथा काश्मीरेषु श्वशूरन्यावा वधूवरयोः शिरसि माङ्गल्यमालां बन्धाति तथैवाऽत्रास्मिन् क्षेत्रेपीयं प्रथा प्रचलिताऽनुसरणीयेति ॥**

- भाषा : जैसे काश्मीर प्रान्त में कन्या की माता वा अन्य स्त्री वर-वधू के सिर पर मंगल माला बान्धती हैं वैसे ही हमारे इस द्विगर्तक्षेत्र में भी यह प्रथा प्रचलित एवं अनुसरणीय बनी हुई है अर्थात् यजमान पत्नी, चाची, ताई आदि वर-वधू का विधिवत पूजन कर उनके सिरों पर मंगल माला बान्धती हैं ॥ यथा : **यजमानपत्नीमानीयः** यजमान पत्नी को लाकर : **कायशोधनम् :** निम्नमन्त्र से यजमान पत्नी अपने शरीर पर पानी की छीटें दे :

तीर्थे स्नेयं तीर्थमेव समानानां भवति मानः ।
शंस्यो अरु रुषो धूर्त्तिः प्राणङ् मर्त्यस्य रक्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥

स्वात्मपूजनम् : निम्नमन्त्र से मस्तक पर तिलक कर सिर पर अर्घ पुष्प धारण करे :

ओ३म् परमात्मने पुरुषोत्तमाय आत्मने नारायणाय समालभनं गन्धोनमः ॥गन्धलेपं निवार्येत् ॥ पुनः अर्घो नमः, पुष्पं नमः ॥

पवित्र धारणम् : निम्नमन्त्रसे दायें हाथ की अनामिका अंगुली में कुशपवित्र धारण करे :

कुशा हरति पापानि, कुशा कल्याण दायिका ।
तस्मात् कुशपवित्रं तु, श्रद्धया धार्याम्यहम् ॥

कंकण बन्धनम् : निम्न मन्त्र से आचार्य उसके बायें हाथ की कलाई में रक्षा सूत्र बान्धेः

मन्त्रार्थाः सुफलाः सन्तु, पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु, मित्राणां उदयस्तव ॥ जीवत्वं शरदः शतम् ॥

दीप पूजनम् : निम्नमन्त्र से दीपक को नमस्कार करे :

सुप्रकाशो महादीपः, सर्वतस्तिमिरापहः ।
प्रसीद मम गोविन्द, दीपोऽयं परिकल्पिता ॥

धूप पूजनम् : निम्न मन्त्र से धूप को नमस्कार करे :

वनस्पति रसो दिव्यो, गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

सूर्य पूजनम् : निम्नमन्त्र से सूर्य को नमस्कार करे :

नमो धर्म निधानाय, नमः सुकृति साक्षिणे ।
नमः प्रत्यक्ष देवाय, भास्कराय नमो नमः ॥

धूपदीप सङ्कल्पः निम्नमन्त्र से प्रणीत पात्र में जल लेकर तर्पण करते हुए कहे :

यत्रास्ति माता न पिता न बन्धु, र्भ्रातापि नो यत्र सुहज्जनश्च ।
न ज्ञायते यत्र दिनं न रात्रि, स्तत्रापि दीपं शरणं प्रपद्ये ।

ॐ तत्सदद्य तावत् मासोत्तमेऽमुक मासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौऽमुकवासरे महागणपतये, कुमाराय, श्रियै, सरस्वत्यै, लक्ष्म्यै, विश्वकर्मणे द्वारदेवताभ्यः ब्रह्मविष्णुमहेश्वर देवताभ्यः । प्रजापतये, ब्रह्मणे कलशदेवताभ्यः । चतुर्वेदेश्वराय सानुचराय, 'ऋतुपते नारायणाय' अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये, अर्यम्णे, गन्धर्वाय, विवाहोद्वाहदेवताभ्यः **(यजमान-पत्नी कहे)** कन्योद्वाह निमितं धूपदीप संकल्पात् सिद्धिरस्तु धूपो नमः दीपं नमः ॥ महेश्वरस्त्र्यम्बकश्च ईशानः शिव एव च । भवः शर्वश्च रुद्रश्चदक्षिणादिक्रमेणतु ॥

भाषा : महेश्वर, त्र्यम्बक, ईशान, शिव, भव, शर्व और रुद्र— इन संज्ञा पदों द्वारा दक्षिणादि क्रम से वर के निम्नोक्त अंगों का यथाक्रम दक्षिणपाद से आरम्भकर पुष्प चढ़ाये महेश्वराय नमः **(दक्षिणपादे)** त्र्यम्बकायनमः **(वामपादे)** ईशानाय नमः **(दक्षिण जानौ)** शिवायनमः **(वामजानौ)** भवायनमः **(दक्षिण स्कन्धे)** शर्वायनमः **(वामस्कन्धे)** रुद्रायनमः **(शिरसि)** ॥

- पुनः निम्न सम्बोधन से वर को तिलक लगाये : **विष्णवे महाराजाय समालभनं गन्धो नमः ॥ गन्धलेपं निवार्येत ॥ पुनः** गन्ध लेप धोकर अर्घ पुष्पादि भेंट करे : **विष्णोः महाराजेदं अर्घो नमः, पुष्पं नमः एवं धूपो नमः दीपं नमः ॥**

- **'पुष्पवती' इति मन्त्रेण पुष्पमाला बन्धनम् :** पुनः 'पुष्पवती' मंत्र से पुष्पमालाबान्धेः

पुष्पवतीः प्रसुमतिः फली नीर फला उत् ।
अश्वा इव सजित्वरी वीरुधः पारथिष्णवः ॥

- **गौरी चैव तु गायत्री, सावित्री च सरस्वती ।**
उमा कांता भवानी च, वाम वर्तेन पूजयेत् ॥

भाषा : गौरी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, उमा, कान्ता, भवानी— इन संज्ञा पदों से कन्या के सप्ताङ्गों का स्पर्श करते हुए, वामपाद से प्रारम्भकर पुष्प चढ़ावे ॥ गौर्य नमः **(वाम पादे)** गायत्रै नमः **(दक्षिण पादे)** सावित्र्यैनमः **(वामजानौ)** सरस्वत्यै नमः **(दक्षिण जानौ)** उमायैनमः **(वामस्कन्धे)** कान्तायै नमः **(दक्षिण-स्कन्धे)** भवान्यैनमः **(शिरसि)** ॥

- इसके बाद वधु को निम्न वाक्य से तिलक करे :

विष्णु पत्नयै दुहित्रे समालभनं गन्धो नमः ॥गन्धलेपंनिवार्येत् ॥ एवं अर्घो नमः, पुष्पं नमः ॥

- पुनः निम्नोक्त मन्त्र से यजमान पत्नी कन्या को पुष्पमाला पहनावे :—

पुष्पवतीः प्रसुमतिः फलीनीरफला उत् ।
अश्वा इव सजित्वरी वीरुधः पारयिष्णवः ॥

- **हाथ जोड़ प्रार्थना :** विष्णोः सपत्नीकस्यार्ध्यदानाद्यर्चन विधिसर्वा परिपूर्णोऽस्तु ॥ **आचार्य कहे—** एवं अस्तु ॥ पुनः अर्घपात्र लेकर तर्पण करेः विष्णोः सपत्नीकाय अन्नं नमः, अन्नं नमः, आज्यमाज्यमद्यदिने यथा संकल्पात् सिद्धिस्तु ॥ **पुनः हाथ जोड़ क्षमा याचना करे :** अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं द्रव्यहीनं यत्कृतं तत्सर्वं परिपूर्णमऽस्तु ॥ **आचार्य कहे—** एवमस्तु ॥

- पुनः अर्घकाजल वापिस अर्घपात्र में डालकर और निम्नमंत्र से अभिमंत्रित कर आपोशानदे : **ॐशन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्यो रभिस्त्रवन्तुनः ॥** विष्णवे महाराजायसपत्नीकायेदमापोशानं नमः ॥ (अर्घपात्र उलट दे)

- **पुनः शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्त्रवन्तु नः ॥** मंत्र से अभिमन्त्रित जल में दक्षिणा डाल कर निम्नवाक्य आचार्य द्वारा बुलवाकर जल गिराना : **विष्णवे महाराजाय सपत्नीकाय दक्षिणायै तिलहिरण्यरजत निष्कर्ष ददानि ॥**

- पुनः आचार्य को यथा शक्ति दक्षिणा देते हुए— **एतादेवताः सदक्षिणान्नेन प्रीयन्तां प्रीतास्तु नः ॥ 'वधुवरयोर्मुखे नैवेद्यम्'—** इसके बाद मामा की ओर से लाये गये गुड़, मिश्री आदि वर-वधू को खिलाकर, शेष उपस्थित बान्धवों में बाँट दे। इसके पश्चात् निम्न छन्दों का उच्चारण करते हुए कन्या को दी जाने वाली वस्तुओं की भेंट— **आचारिकानि द्रव्याणि, वस्त्राण्याभरणानिच।**
मणिमुक्त प्रवालानि, यथाशक्तिर्विधीयते ॥

गोभूहिरण्यमश्वांश्च, वस्त्राणि विविधानिच। अन्यानि सर्वदानानि, यथा विभव तस्तथा ॥

- अर्थस्पष्ट है अतः व्याख्या की आवश्यकता नहीं ॥

॥इतिमाङ्गल्यमालाकर्म सम्पूर्णम् ॥

● ● ●

॥अथाग्नि कर्मम् ॥

पात्रं तिला० अग्नि परिसमूह्य, पर्युक्ष्य, परिषिच्य। परिस्तीय १६ अग्नये समनमत्०

- अग्निकुण्ड में अग्नि स्थापित करने के पश्चात् आचार्य निम्नवाक्य बोलते हुए निम्नक्रिया सम्पन्न करे :

पात्रं तिलाऽक्षतैर्मिश्रं, कुसुमोदक विष्टरैः।
अग्नेश्चैशान दिग्भागे, प्रणीतमभिधीयते ॥
प्रणीतं नैर्ऋते स्थाप्यं, सविष्णुर्नाऽत्र संशयः ॥

भाषा : अग्नि के ईशान दिग्भाग (पूर्वोत्तर दिशा) में किसी पात्र विशेष को रखकर इसे तिल, अक्षत, यव, पुष्प एवं विष्टुर से युक्त करके, अग्नि के नैर्ऋकोण (दक्षिण पश्चिमदिशामध्य) में स्थापित करे। पुनः उस प्रणीत पात्र में— **'संव्वः सृजामीति द्वाभ्यां पुष्पाणां त्रितयंक्षिपेत्'** निम्न दो मन्त्रों से तीन पुष्प प्रणीत पात्र में डाले :

संव्वः सृजामि हृदयं, संसृष्टं मनो अस्तु वः।
संसृष्टास्तन्वः सन्तुवः, संसृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥१ ॥
सं या वः प्रियास्तन्वोऽस्तु, संप्रिया हृदयानि वः।
आत्मा वो अस्तु सं प्रियः, संप्रियास्तनवो मम ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : हे प्रणीत पात्रस्थ पदार्थो ! मैं इन पुष्पों द्वारा तुम सबके हृदय को संयोजित करता हूँ। तुम्हारा मन मिला हुआ है और तुम्हारे शरीर परस्पर (संसृष्टासन्तु) मिले हुए होवें ॥१ ॥ पात्रङ्गीभूत द्रव्यो ! जो तुम्हारे शरीर हैं, वे कल्याणकारी हों। तुम्हारे हृदय सुखकारक हों तथा तुम्हारी आत्मा सम्यक रूप से प्रिय होवें और मेरे शरीर आदि के लिए मंगलकारी होवें ॥२ ॥

● पुनः आचार्य निम्नमन्त्र बोल कर दो जलते दर्भकाण्ड दक्षिणा दिशा की ओर फेंके :

निर्दग्ध रक्षो निर्दग्धारातिरऽपाग्ने।
अग्निमाऽमादं जहि निषक्राव्यादं सीदादेवयजनंवह ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्निदेव ! यहाँ विराजिये, इस वैवाहिक अग्नि से विघ्नोत्पादक शत्रु दूर हों तथा अपक्व वस्तुओं का भक्षण करने वाले (क्राव्य अदम्) मांस भक्षक अमङ्गलकारी राक्षसों को नाशकर एवं इस (आदेव यजनम्) सब देवों के निमित किये जाने वाले यज्ञ को निर्विघ्न वहन कर ॥

● **'प्राणायामं कुर्यात्'**— इसके पश्चात् प्राणायाम किया जाय ॥

॥अथ प्राणायामः ॥

ओ३म् भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्।
ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्यधीमहि धियो योनः प्रचोदयात्॥
ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

॥प्राणायाम विधिः ॥

प्राणायाम की तीन क्रियायें हैं : **(क) पूरक :** शुद्ध वायु को नासिका छिद्रों से धीरे-२ अन्दर लेने की क्रिया 'पूरक कहलाती है। **(ख) कुम्भकः** अन्दर लिए हुए वायु को अन्दर ही रोके रखना 'कुम्भक' तथा **(ग) रेचक :** भीतर से बाहिर श्वास निकालने की क्रिया की 'रेचक' संज्ञा है ॥ 'पूरक' में एक बार 'कुम्भक' में दो बार और रेचक में तीन बार मन्त्रोच्चारण की क्रिया प्राणायाम है ॥

● **तत्पश्चात् ३ दर्भाङ्कुर लेकर निम्नमन्त्र से अग्निकुण्ड के चारों ओर से धूली आदि को हटाये (आचार्यद्वारा यह क्रिया) :**

ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्निं' परिसमूह्यामि, सत्यन्त्वर्तेन परि समूह्यामि,
ऋतसत्याभ्यां त्वा परिसमूह्यामि ॥

मन्त्रार्थ : हे यज्ञ ! (त्वा) तुझ (ऋतम्) यज्ञ को (सत्येन) सत्य द्वारा (परिसमूह्यामि) चारों ओर शोधन करता हूँ। हे सत्य तुझ (सत्यम्) सत्य को (ऋतेन) यज्ञ द्वारा चारों ओर शोधन करता हूँ। हे अग्निदेव ! तुझ को यज्ञ और सत्य द्वारा चारों ओर शुद्ध करता हूँ ॥

● इस कृत्य के बाद प्रणीतपात्रस्थ जल को दर्भविष्टर द्वारा निम्नमन्त्र बोलते हुए अग्निकुण्ड के चारों ओर छिड़के :

ऋतस्त्वां सत्येन पर्युक्षामि, सत्यन्त्वर्तेन पर्युक्षामि,
ऋतसत्याभ्यां त्वा पर्युक्षामि ॥
ऋतन्त्वा सत्येन परिषिञ्चामि, सत्यन्त्वर्तेन परिषिञ्चामि,
ऋतसत्याभ्यान्त्वा परिषिञ्चामि ॥

पर्युक्षनः बिना किसी मन्त्रोच्चारण के अर्थात् अन्दर से ही, चारों ओर छीटें देना ।

परिषिञ्चन : मन्त्रोच्चारण करते हुए जल छिड़कने की क्रिया को 'परिषिञ्चन' कहते हैं ।

● इस क्रिया के पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर निम्नमन्त्र बोले :

यज्ञस्य सन्ततिरसि यज्ञस्यत्वा सन्तत्यैस्तृणामि ॥

मन्त्रार्थ : हे कुशस्तर ! तू (यज्ञस्य) अग्नि की (सन्तति) परिधि (असि) है, अतः (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य सन्ततयै) अग्नि की परिधि के लिए (स्तृणामि) बिखेरता हूँ ॥

● पुनः निम्न अनुष्टुपछंद बोलेत हुए आचार्य यजमान द्वारा अग्नि केचारों ओर दर्भकाण्ड बिखेरेः

आदौ पञ्च पुनस्त्रीणि, त्रीणि पञ्च विधान्वित ।
अध्वर्युः प्राङ्मुखो भूत्वा, दद्यात्षोडशवैस्तरात् ॥

दर्भा काण्ड बिखेरने का क्रमः दर्भाओं के १६ काण्ड हाथ में लेकर पूर्व में पाँच, दक्षिण की ओर तीन, पश्चिम में तीन और उत्तर दिशा की तरफ पुनः पाञ्च-इस प्रकार दर्भकाण्ड बिखेरे ॥

● उक्त क्रिया सम्पादन के बाद अग्नि भद्र का मङ्गलमय पाठ करे :

अग्नये समनमत् पृथिव्यै समनमद् यथाग्निः पृथिव्या समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥१ ॥

वायवे समनम दन्तरिक्षाय समनमद्, यथा वायुरन्तरिक्षेण समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः संनमन्तु ॥३ ॥

वरुणाय समनमद् अद्भ्यः समनमद्, यथा वरुणोद्भिः समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥४ ॥

साम्ने समनमद् ऋचे समनमद्, यथा सामर्चा समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्ममन्तु ॥५ ॥

ब्रह्मणे समनमत् क्षत्राय समनमद्, यथा ब्रह्मक्षत्रेण समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥६ ॥

राज्ञे समनमद् विशे समनमद्, यथा राजाविशा समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥७ ॥

रथाय समनमद् अश्वेभ्यः समनमद्, यथा रथौऽश्वैः समनम।
देवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु ॥८ ॥

● **उत्तरतः संस्तीर्णे पात्राणि द्वन्द्वं प्रयुनुक्ति दर्भोपयामं शूर्पस्रुचंदर्भकृष्णाजिनमुलूखलमुसलं दर्भपात्रे चरुभेक्षणं, दर्भाज्यधानी स्रुक्स्रुवावाघार समिधौ ॥**

भाषा : अग्नि की उत्तर दिशा की ओर दर्भा के आस्तरण (बिछावन) पर यज्ञीय पात्र दो-दो करके यज्ञ के कार्य का सम्पादन करने के लिए प्रयुक्त करे। दर्भ एवं उपयाम (ब्रह्मग्रन्थी से युक्त वेणी रूप गुन्थी हुई तीन कुशाऐं होती है), शूर्प तथा स्रुचा (अन्न के कणों और भूसे को अलग करने वाला विशेषपात्र शूर्प तथा दर्वी के आकार वाला हवनार्थ पात्र स्रुच कहलाता है), दर्भायें और कालेमृगचर्म, ऊखल तथा मूसल, दर्भा के पात्र में चरु पकाने में प्रयोग होने वाला लकड़ी का चमच, कुशायें और घृत पात्र तथा स्रुच (स्रुचाकार) किन्तु इसके अग्रभाग में दो पात्र चमचाकार होते हैं जिसमें प्रथम पात्र स्रुक तथा उत्तर पात्र को स्रुव या स्रुच कहते हैं, अघार संज्ञा युक्त यज्ञ भाग के लिए दो समिधायें ॥ ● उक्त वस्तुऐं यथा क्रम तथा यथा स्थान रखकर : **ब्रीहीन्यवान्वोपसाद्य, पाणी प्रक्षाल्य, सशूर्पं स्रुचमादाय, अग्नौ प्रतिताप्य, चतुर्भिर्मुष्टिभिः स्रुचं पूरयित्वा, पवित्रादिना यथा देवतं निर्वपति ॥**

भाषा : (ब्रीहीन् यवानवा उपसाद्य) धान अथवा जौ को अपने पास लाकर, दोनों हाथ धोकर, शूर्प के साथ स्रुचा को भी अपने समीप उपस्थित रखे, पुनः उस स्रुचा को अग्नि पर तपा कर, उसे चार मुठी धान अथवा जौ से भर कर यज्ञ के प्रधान देवता के अर्पण यजमान द्वारा 'सविता' के मन्त्र से कराये ॥यथा :

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणोहस्ताभ्याम् ।
अग्नये पुष्टिपतये प्रजापतये विवाह देवताभ्यो जुष्टं निर्वपामि ॥

मन्त्रार्थ : (हे पुरोडाशअर्थात् चरु) ! (सवितु प्रसवे) सूर्यदेव की आज्ञा में रहने वाले अश्विनीकुमारों की भुजाओं से तथा पूषा देवता के हाथों से (तुझको) (जुष्ठुम्) असंस्कृत रूप में ही अग्नि, पुष्टि पति तथा प्रजापति-इन विवाह संस्कार के प्रधान देवताओं के लिए (निर्वपामि) अर्पण करता हूँ ॥ इसके बाद—

विष्णोर्मनसेति दर्भौ पवित्रमुन्मृज्य समावच्छिन्नाग्रौदर्भौ प्रादेशमात्रौ पवित्री करोति, 'विष्णोर्मनसा पूतेस्थः' इति ॥

भाषा : बालिश्त भर लम्बे दो दर्भाङ्कुर जो सीधे और बराबर हों, जिनका अग्रभाग कटा हुआ न हो लेकर उन्हें निम्नमन्त्र से जल द्वारा साफकर के कुश पवित्र बनाये :

'विष्णोर्मनसा पूतेस्थः' ॥ हे पवित्र ! तुम विष्णु के अभिप्राय से पवित्र हो ॥

● ताभ्यां 'दिवोव' इति स्रुचमुदकमुत्पूय अङ्गुष्ठोपकनिष्ठकाभ्यामुत्तानाभ्यां पाणिभ्यां उदगग्रौ दर्भावादाय प्राचीनमुत्पुनाति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तष्णीम् ॥

'देवो वः सवितो 'त्पुना' त्वच्छिद्रेण 'पवित्रेण' सूर्यस्य 'रश्मिभिः' ॥१ ॥

भाषा : उन दोनों दर्भाओं को उत्तराग्र करके दोनों प्रसारित अंगुष्ठ तथा अनामिक अङ्गुली से पकड़े हुए एक बार उपरोक्त मन्त्र पढ़ कर और दो बार चुपचाप ही स्रुचा में स्थित हविष्यान्न को शुद्ध जल द्वारा प्रोक्षण के बाद अग्नि के उत्तर दिग्भाग में पूर्व स्थापित अन्ययज्ञीय उपकरणों को भी उक्त प्रकार से ही प्रोक्षण करे ॥

मन्त्रार्थः (हे यज्ञीय उपकरणो) ! (वः) तुम सब को सविता देवता सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से तथा (अच्छिद्रेण पवित्रेण) अच्छिन्न पवित्र से (उत्पुनातु) पवित्र करे ॥१ ॥ पुनः

पृशन्याः पयोऽसि तस्य तेऽक्षीयमाणस्य पिन्वमानस्य पिन्वमान निर्वपामि ॥२ ॥

- इस उपरोक्त मन्त्र को पढ़ते हुए आज्यपात्र में घृत को डाले ॥

मंत्रार्थ : हे घृत ! तू (पृशन्याः) गायके (पयः) दूध का एक रूप (असि) है । (पिन्वमानस्य) सिञ्चायमान तथा (अक्षीयमाण) नाश रहित (वस्यपिन्वमानम्) उस तेरे अंश को (निर्वपामि) छोड़ता हूँ अर्थात् आज्यपात्र में डालता हूँ ॥

- पुनः निम्नमन्त्रों से आज्यपात्र को पकड़े : **पञ्चानान्त्वा वातानां धर्त्राय गृहणामि, पञ्चानान्त्वा सलिलानां धार्त्राय गृहणमि, पञ्चानान्त्वा पृष्ठानां धात्राय गृहणामि, पञ्चानान्त्वा दिशां धार्त्राय गृहणामि, पञ्चानान्त्वा पञ्चजनानां धार्त्राय गृहणामि ॥१ ॥ भूरस्माकं हव्यं देवानामाऽऽशिषो यजमानस्य पंचबिलस्य चरोः धार्त्राय गृहणामि । धामासि प्रियन्देवानांऽनाधृष्टं देवयजनम् देवताभ्यस्त्वा देवाभ्यो गृहणमि ॥२ ॥**

मन्त्रार्थः हे आज्य (घृत) ! मैं तुझे (पञ्चानां वातानाम्) पाँच प्रकार के पवनों के (धार्त्राय) धारण करने के लिए (गृह्णमि) ग्रहण करता हूँ । (इस प्रकार) हे आज्य ! मैं तुझे पाँच प्रकार के जलों, रथादि पृष्ठों, पाञ्च तत्वात्मक पाँच प्रकार के प्राणियों (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज, अनुलोमज) पाँच दिशाऐं जिसके वितर हैं, उस बादल के के धारणार्थ तुझे ग्रहण करता हूँ ॥१ ॥ हे आज्य ! तुझ देवताओं के होम द्रव्य को उस बादल के लिए धारण करता हूँ जिसके पाँच दिशाओं रूपी कान हैं । तू हम सब प्राणियों की तथा यजमान की (आशिषः) मंगल कामना का स्थान है । हे आज्य ! तू (धाम असि) तेज है, तुझ देवताओं के प्रिय पदार्थ को अनभिभवनीय तथा देवताओं के यज्ञ के साधन- हाथ द्वारा देवताओं के लिए ग्रहण करता हूँ ॥२ ॥

- पुनः निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए घृत को पिघलाने के लिए अग्नि पर रख दे :

'ऊर्जेत्वेत्यग्नावऽधिश्रयति' भाषा : हे आज्य ! तुझ को बल के लिए अग्नि पर धरता हूँ ॥

- पुनः घृत के पिघल जाने पर : **अग्नेर्जिह्वासि सुपूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने त्वायजुषे यजुषे ॥**

इस उपर्युक्त मंत्र से कुश पवित्र द्वारा घृत का शोधन करे, उस में तिनका, केशादि निकृष्ट वस्तु यदि पड़ी हो उसे निकाल बाहर फैंक दे ।

- इस उपर्युक्त मंत्र से कुश पवित्र द्वारा घृत का शोधन करे, उस में तिनका, केशादि निकृष्ट वस्तु यदि पड़ी हो उसे निकाल बाहर फैंक दे ।

मन्त्रार्थ : हे आज्य ! तू (अग्निर्जिह्वा असि) अग्नि की जीभ है (धाम्ने धाम्ने) स्थान-स्थान पर जहाँ तुझ को (यजुषे यजुषे) यज्ञों के लिए प्रयुक्त किया जाये वहाँ तू (देवेभ्यः) देवताओं के लिए (सुपूः) भली प्रकार से पवित्र होवे ॥

- इसके पश्चात् निम्न मन्त्र से यजमान घृत तथा उसमें अग्नि ज्वालाओं के प्रतिबिम्ब का भली प्रकार अवलोकन कर आज्यपात्र में दक्षिणा डाले ॥

हविरसि वैश्वानर मुन्नीत शुष्मं सत्यौजाः सहोनामासि सहस्वाऽराति
सहस्वा पृतनायतः सहस्रवीर्यमऽसि तन्माजिन्वाज्यस्याजामऽसि हविषो
हविः सत्यमभिघृतमसि सत्येन त्वाभिधारयामि सत्यं वै चक्षुः ॥
आत्मनो वाङ्मनः कायोपार्जित पाप निवारणार्थं अग्नेय, पुष्टिपतये, प्रजापतये
विवाहोद्वाह देवताभ्यः इदम् आज्यम् अर्पयामि नमः ॥

मन्त्रार्थ : हे आज्य ! तू (हविः असि) हवनीय द्रव्य है, तू (वैश्वानर) सर्वगामी, सर्वयज्ञ का साधन (उन्नीत शुष्मम) पराकर्मवर्धक (सत्य औजः) वास्तविक सामर्थ्य और (सहस्रवीर्यम) हजारों प्रकार के बलों से उत्पन्न है तथा तू (सहोनामासि) बल नाम वाला है तू (आरातिं सहस्व) शत्रु को पराजित कर तथा (पृतनायतः) संग्राम करने वालों को (सहस्व) निस्तेज कर (तत्) इस कारण (मा जिन्व) मुझे विजयी कर, हे आज्य ! तू (आज्यस्य) सामान्य घृत की अपेक्षा' उत्तम हवि है । तू (सत्यम् अभिघृतम् असि) सत्यरूपी पवित्र घृत है और (चक्षुः) नेत्र शक्ति भी (वै सत्यम्) निश्चय ही सत्यरूप है, अतः (त्वा सत्येन अभि धारयामि) तुझ सत्यरूपी आज्यको, नेत्र शक्ति रूपी सत्य से अवलोकन करता हूँ ॥

- यजमान के पश्चात् यजमान पत्नी भी निम्नमंत्र से संस्कृत घृत का अवलोकन करे :

इषेत्वा अदब्धेन त्वा चक्षुषाव पश्यामि रायस्पोषाय सु प्रजस्त्वाय सुवीर्याय ॥
दम्पत्योरायुष्कामना सिद्ध्यर्थं कन्योद्वाह निमितं अग्नये वैश्वानरायेदमाज्यमर्पयामि नमः ॥

मन्त्रार्थ : हे आज्य ! मैं तुझको अनुपहिंसित नेत्र शक्ति से (अवपश्यामि) देखती हूँ । (रायः पोषाय) धनवृद्धि के लिए (सुप्रजात्वाय) भली सन्तान के लिए तथा (सुवीर्याय) अच्छे सामर्थ्य के लिए (अवपश्यामि) तेरा अवलोकन करती हूँ ॥

- इस कृत्य के पश्चात् आचार्यः अभ्युक्ष्य पवित्रमाग्नौ अभ्यादधाति स्रुकस्रुवौ प्रतिताप्यः उपयामाग्रैः समर्ष्टि स्रुवमग्रेऽथ स्रुचमग्नेरभिमुखं कृत्वा अग्नैः पात्रं समार्ष्टिमूलैर्दण्डं सर्वतः स्रुवं पुरस्तात्प्राचीं स्रुचमधस्तात् प्रतीचीं यथा संसृष्टंऽभ्युक्ष्य सम्मार्जन्याग्नौ प्रहरति ॥ **भाषा :** प्रथम पुरोडाश संस्कार एवं आज्य संस्कार में उपयुक्त होने वाले कुश को पवित्र जल से शोधन करके अग्नि के ऊपर धारण करे, स्रुक्स्रुव को तपाकर, उपयाम तथा सम्मार्जन कुशाओं के अग्र भागों से उन यज्ञीय पात्रों को साफ करे अर्थात् प्रथम स्रुव उसके बाद स्रुच को अग्नि के सामने करके उपयाम और सम्मार्जन कुशाओं के अग्रभाग से उनके पात्र विभागों को और मूल विभागों द्वारा उनके दण्ड विभागों को सब ओर से साफ करे, पुनः पहले स्रुव को पूर्व की ओर रखे, जिस प्रकार शुद्ध हो धोकर तथा तपा कर संमार्जन कुशायें अग्नि में डाल दे ॥

- इसके पश्चात्— **'उपयामे स्रुचमादाय तस्यां चतुर्गृहीत्तमुदधृत्य' तेजोऽसि, शुक्रमासि, ज्योतिरसि, धामासि ॥**

भाषा : उपयाम पर स्रुचा लेकर, उसमें आज्य पात्र से चार बार उपर्युक्त संज्ञा पदों से आज्य उठाकर संग्रह करे ।

संज्ञा पदाऽर्थ : हे आज्य ! तू तेज है, बल है, ज्योति और प्रकाश है ॥

- **आस्तीर्णैतांनिधाय अभ्युक्ष्याधार समिधौ अग्नेरभित ऊर्ध्व आदधाति उत्तरां प्रथमां दक्षिणां द्वितीयाम् :** उस आज्यगृहीत स्रुचा को कुशस्तरण पर स्थापित करके आघार संज्ञक होम की पूर्व स्थापित दोनों समिधाओं को जल से धोकर अग्नि के ऊपर दोनों तरफ पहली उत्तर दिशा में और दूसरी दक्षिण दिशा में रख दे ॥ इस क्रिया के बाद—

श्रृतं चरुमभिचार्य तमुदगुद्वासयति तत्रचाभिघार्य अलङ्कृत्य पात्र्यां सादयत्यभिघार्य बर्हिष्यासादयति पूर्वमाज्यमपरम् स्थालीपाकमभिघार्य ॥

भाषा : पके हुए चरु पर घी छिड़ककर, उसे चूल्हे से उतार कर, आज्य के आगे से ले जाते हुए अग्नि के उत्तर में स्थापित करे, वहाँ भी उसे घी का छींटा दे, फिर चरु पकाने के पात्र से चरु निकाल कर, एक थाली में सजाकर रखने के बाद उसे घी का ढार देकर, कुशाओं पर पहले घृत को, बाद में चरु की थाली को आसादित करे, वहाँ पनः चरु पर घी का आघारण करें ॥

'स्रुवमाज्यपूर्णं दक्षिणतः स्रुचो बर्हिषि निदधाति, परिस्तीर्य वेदिमुदक तूलमास्तीर्य तत्रोपविश्याग्निमभ्युर्च्य ॥

भाषा : घृत से भरा हुआ स्रुव कुशा पर स्रुचा के दक्षिण में स्थापित करे । तदनन्तर यज्ञ वेदी को कुशा से परिस्तरण (साफ) करके अग्नि की उत्तर दिशा में रूई वाला आसन बिछाकर तथा उस पर बैठ कर अग्नि की अभ्यर्चना (चिन्तन, ध्यान) **करें :**

ज्वालामण्डितमाकाशं, साक्षमालाकमण्डलुम्।

त्रिनेत्रं पञ्च वक्त्रं च, होमकाले तु चिन्तयेत ॥

शुक पृष्ठागतंदेवं शक्तिहस्तं चतुर्भुजम्। मृगाजिनेनसन्नद्धं, पुष्पवर्णं हुताशनम् ॥

● उक्त श्लोकों को पढ़ते हुए अग्निदेव पर पुष्प छोड़ते हुए ध्यान करें ॥

छन्दार्थ : ज्वालाओं से सज्जित, प्रकाशस्वरूप, त्रिनेत्र, पञ्चमुख, कमण्डल धारी, शुक वाहन पर बैठे हुए, शक्ति हाथ में धारण किये हुए, पुष्पवर्ण, हुत भक्षकादि— उपर्युक्त स्वरूप का चिंतन करें ॥

● पुनः यजमान निम्न संज्ञा पदों का उच्चारण कर अग्निदेव को गन्ध, अर्घ, पुष्प, धूपदीप, नैवेद्य, जल तथा दक्षिणा भेंट करे :

अग्नये, वैश्वानराय, शुकारूढाय, स्वाहासहिताय, पावकाय, त्रिनेत्राय, तेजोरूपाय, समालभनं गन्धो नमः ॥ गन्धलेपं निवार्येत् ॥ एवं अर्घोनमः, पुष्पं नमः, धूपदीपनैवेद्यं नमः ॥ भगवान् अग्निदेव सदक्षिणान्नेन प्रीयन्तां प्रीताऽस्तु ॥

● अग्नि की अभ्यर्चना पश्चात् उपयाम को वाम हाथ में लेकर आचार्यः 'प्रजापतये स्वाहा' ॥ **इस मन्त्र का मानसिक उच्चारण कर स्त्रुवस्थघृत अग्नि के उत्तर में स्थापित पहली आधार समिधा पर डाले दे। पुनः खड़े होकर स्त्रुचा को हाथ में लिए हुए :** 'ऊर्ध्वौ अध्वरो दिवस्पृगऽह्नुतो यज्ञो यज्ञपतेरिन्द्र वान् वृहद् भाः स्वाहा' ॥ **उक्त मंत्र को बोलकर, पूर्व में चतुर्गृहीत दक्षिणस्थ दूसरी आधार समिधा पर डाल देवे। ऐसा कर चुकने पर पुनः आसन पर बैठ जावें।**

मन्त्रार्थ : (यज्ञपते) यज्ञपति का सम्बन्धी यह (यज्ञः) आधार संज्ञक यज्ञ (ऊर्ध्वः) उत्पन्न हुआ जो (अध्वरः) हिंसा रहित (दिवः पृग्) स्वर्ग प्रद (अह्रुतः) अकुटिल (इन्द्रवान्) इन्द्रदेवता वाला तथा (वृहद्भाः) अतिशय प्रकाश सम्पन्न है अतः इसके लिए यह हवि (स्वाहा) सुहूतहोवे ॥

॥इत्याधारः ॥

॥अथाज्यभागः ॥

निम्न मन्त्रों से आज्य (घृत) का होम करें :

युक्तः पुरस्ताद् वह हव्यमग्रेऽग्ने विद्धि क्रियमाणं मयेदम्।

त्वं भिषज्भेषजस्यसि त्वया प्रसूता गामश्वे पुरुषं सनेम ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे (अग्ने) अग्नि देव ! (पुरस्तात्) सबसे पूर्व तू ही (युक्तः) सावधान हुआ, (हव्यं वह) हविको (देवतार्थ) वहन कर (इदम् मया क्रियमाणम्) यह मेरे द्वारा किया जाने वाला यज्ञ कर्म (अग्रविधि) पहले तू ही जान ले, क्योंकि सारे विगुण कर्मों को परिपूर्ण करने वाले (त्वं भिषक) तुम उत्तम चिकित्सक हो। (भेषजस्य) संसार के दुःखों के निवृत्ति हेतु यज्ञ का तू (गोप्ता) रक्षक है (त्वया) तुझसे (प्रसूता) लब्ध अनुज्ञा लिए हम (गाम्, अश्वम्, पुरुषम्, सनेम) गाय, घोड़ा, भृत्यादि को प्राप्त करें ॥

हृदा पूतं मनसा जातेवेदो विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्।
सप्तास्यानि तव यान्यग्ने तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्ने ! (हृदा) अन्तरात्मा और (मनसा) मानसिक शुभ संकल्प से (पूवं हव्यम्) पवित्र हुए यज्ञीय पदार्थ को (जुषस्व) भक्षण करें (हे जातवेदः) उपजातप ज्ञान अग्निदेव ! (सः विश्वानि) वह तू समस्त (वयुनानि) पराभिप्राय प्रकाशक ज्ञानों को (विद्वान्) जानने वाला है अतः मैं (यानि तव सप्त आस्यानि) जो तुम्हारे सात मुख हैं (तेभ्यः जुहोमि) उनके लिए होम करता हूँ ॥

यावन्तो देवास्त्वयि जात वेदस्तिर्यञ्चो घ्नन्ति पुरुषस्य कर्म।
तेभ्यः एतद् भागधेयं ते मे तृप्ताः काममनु तर्पयन्तु ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे (जातवेदः) सर्व व्यापक अग्निदेव ! (त्वयितिर्यञ्चा) तुझ कुटिलगति वाले (यावन्तः देवाः) जो नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय रूप देवता हैं (जो विषयों में फंसाकर) (पुरुषस्य कर्म घ्नन्ति) मानव के शुभकर्म का हनन करते हैं (तेभ्यः) उन सूर्यादि अधिष्ठातृ देवताओं के लिए (एतद्भागधेयम्) यह हवि का अंश मैं (जुहोमि) होम करता हूँ, जिससे (ते तृप्ताः) वे सब देवता प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर (मे कामम्) मेरे अभीष्ट इस यज्ञ कर्म को (अनुतर्पयन्तु) अनुकूल सहायता से परिपूर्ण करें ॥

अग्ना अग्निश्चरति प्रविष्टऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः।
स नः सूनुः सुयुजायुजा च मा देवानां रीरिषद् भागधेयम् ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : (ऋषीणाम्) ऋषियों (ऋत्विगादिकों का अरणि द्वारा (पुत्रः) उत्पन्न किया हुआ (एषः अधिराजः) यह अधिक प्रकाश सम्पन्न (अग्निः) निर्मथ्याग्नि (नः सूनुः) हमारा प्रकट किया हुआ (सयुजायुजा च) आह्वानीयके सहयोग से या असहयोग से (मा देवानां) मत देवताओं के भाग को (रीरिषत्) नष्ट करे ॥

प्रजापते न हि त्वदन्य एता विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो वयं स्याम पतियो रयीणाम ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे (प्रजापते) प्रजापालक परमात्मन् ! (त्वत् अन्यः) तुझसे दूसरा कोई (एता) इन वर्तमान, भूत और भविष्यके (विश्वाजातानि) सारे उत्पन्न पदार्थों को (नहि परिबभूव) नहीं व्याप्त रहा है । अतः हे प्रभो ! (यत्कामाः) जो कामना लिए हम (तेजुहुमः) तेरे लिए होम करते हैं (तत् नः अस्तु) वह हमारी अभिलाषा पूर्ण होवे और (वयं रयीणाम्) हम नाना प्रकार के धनों के (पतयः स्याम) स्वामी बनें ॥

● **'अपरेणाग्निमनोरथं वाऽवस्थाप्य वधुवरौ प्राङ्मुखौ तिष्ठन्तौ 'योगेयोगेति' मन्त्रवृत्य युनक्ति'** अर्थात् इस कृत्य के बाद दम्पति के सम्बन्धी लोग-वैवाहिक अग्नि के पश्चिम दिग्भाग में (अनः रथं वा) छकड़ा या रथ स्थापित करके 'योगे यागे' इस निम्न मन्त्र से वर-वधू को पूर्व मुख करके आचार्य ग्रन्थिबन्धन करे यानि मंगल डोरी से बान्धे :

योगे योगे तवस्तरे वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्र मूतये ॥

मन्त्रार्थ : (तवस्तरे) महत्तम (इन्द्रम) इन्द्रदेवता को हम इस दम्पत्ति के (सखायः) सम्बन्धी लोग इस (योगे) वर-वधू के सहभाव से स्थित (योगे) विवाह सम्बन्धी कर्म में तथा इस (वाजे) अन्न घृतादि से होने वाले (वाजे) यज्ञमें (उतये) रक्षा हेतु (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ● पुनः आचार्य : **'दक्षिणमितरमुत्तरमितरां तूष्णीं विमुच्य तत उपविश्य'** अर्थात् चुपचाप बिना किसी मन्त्रोच्चारण के, पूर्व जो ग्रंथिबन्धन किया है, उसे खोल दे, वर को उत्तर की ओर तथा कन्या को दक्षिण की ओर स्थित करके :

● **'खे रथस्येति हिरण्य मूर्ध्वपाशेग्रन्थिनादर्भैर्बद्ध्वा'** ॥ 'खेरथयस्य' इस मंत्र से रथ के दक्षिण की ओर के जुए के छिद्र में जो आसानी से बाद में खुल सके दर्भाविष्टर से सोने को बान्धकरः **खेरथस्य खेऽनसः खेयुगस्य शतक्रतो, अपालमिन्द्रस्त्रिष्पूता करोतु सूर्यवर्चसाम् ।।**

मन्त्रार्थ : हे (शतक्रतो) अनन्त शक्तिशाली परमात्मन् ! (रथस्य खे) रथ के छिद्र में या (अनसःखे) छकड़े के छिद्र में (युगस्यखे) युग के छिद्र में से (इन्द्रः) इन्द्र देवता इस (अपालाम्) अबला वधू को अथवा अत्री ऋषि-कन्या अपाला की तरह इस (त्रिः पूतः) तीन बार जल से पवित्र करके (सूर्य वर्चसम्) सूर्य देव के समान कान्ति मान करे ॥

● **'इति हिरण्यं निष्ट्यर्क्यं बद्धवाध्यधि मूर्धनि दक्षिणस्मिन्युगतत्क्ष्मन्यऽदि्भरेव असिञ्चति शन्ते हिरण्यमिति च'** इस प्रकार सोने को विष्टर से बान्धकर रथ वा छकड़े वा युगा छिद्र के नीचे वधू को लाकर, उसके मस्तक पर 'शन्तेहिरण्य' इस निम्नमंत्र का उच्चारण करते हुए तीन बार जल का मार्जन कर अभिषेक करे :

शन्ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः, शन्ते मेथि भवतु शँ युगस्य तत्क्ष्म।
शन्त आपश्शन्त पवित्रा भवन्त्वेनापत्या तन्वा संसृजस्व॥

मन्त्रार्थ : हे कन्ये ! (ते हिरण्यं) तेरे लिए यह सोना (शम्) सुखकर हो (उ आपः) और जलधारायें (शं सन्तु) सुख प्रद होवें (ते मेथि) तेरे लिए रथ का विरूथ (शं) सुखदायक और (युगस्य तत्क्ष्म) युग का छिद्र (शं भवतु) सुखकर होवें। (ते आपः शत पवित्रा) तेरे लिए जल अत्यन्त पवित्र और (शं सन्तु) शान्ति वर्धक होवें अतः तू (पत्या) पति के साथ (एनातन्वा) इस संस्कृत शरीर से (संसृजस्व) प्रजा की सृष्टि कर॥ **'ततो वरस्य उत्तरतो वधूमुपवेश्य दक्षिणतः पुमान्भवत्यथ जुहोति'** फिर वधू, वर के बाँयी ओर आ जावे। वर को वधू के दक्षिण में लाकर, दोनों के बैठ जाने पर निम्नमंत्रों द्वारा आचार्य वर से घृत का होम करावे। यथाः

अग्नये जनिविदे स्वाहा। सोमाय जनिविदे स्वाहा। गन्धर्वाय जनिविदे स्वाहा॥

मन्त्रार्थ : (जनिवदे) वधू को जानने वाले अग्निदेव के लिए सुहूत होवे। शेष इसी प्रकार॥

● **'आयुषः प्राणमित्यैकादश नाभेर्भौवनस्यार्षम्'** वर 'आयुषः प्राणं०' इत्यादि निम्न ग्यारह 'सनतनीसंज्ञक' ऋचाओं का यथा पूर्व होम करे :

आयुषः प्राणं सन्तनु स्वाहा। प्राणाद्व्यानं सन्तुन स्वाहा। व्यानादऽपानं सन्तनु स्वाहा।
अपाना च्चक्षुषः सन्तनु स्वाहा। चक्षुषः श्रोत्रं सन्तनु स्वाहा॥
श्रोत्राद् वाचं सन्तनु स्वाहा। वार्चामानं सन्तनु स्वाहा॥
आत्मनः पृथिवीं सन्तनु स्वाहा। पृथिव्याऽन्तरिक्षं सन्तनु स्वाहा।
अन्तरिक्षाद् दिवं सन्तनु स्वाहा। दिवः स्वः सन्तनु स्वाहा॥

मन्त्रार्थ : 'जयाभ्याताभ्यां राष्ट्रभृतश्च तानि यथोक्तमधिपत्यानि जुहोति'— 'आकूतमिति त्र्योदशाहुती 'द्वांदश गृहीतेन प्रतिमंत्रम् जुहुयात् इति लोगाक्षिः' ॥

भाषा : फिर जया, अभ्याता और राष्ट्रभृत संज्ञक ऋचाओं को यथोक्त विधि से होमा जावे— निम्न जया संज्ञक तो तेरह आहुतियां हैं इनमें 'आकूतं तः पौर्णमासः' इन १२ आहुतियों का घृत स्रुच से उठा कर, प्रतिमंत्र थोड़ा-थोड़ा स्रुच में डाला जावे और अन्ति १३वें मन्त्र से स्रुच में जमा हुआ सारा घृत अन्तिम मंत्र के स्वाहा उच्चारण पर अग्नि में सुहूत करे-ऐसा महर्षि लोगाक्षी का कथन है ॥ यथाः

[१]आकूतं [२]चाकूतिश्चा [३]धीतं चा [४]धीतिश्च [५]विज्ञातं च [६]विज्ञातिश्च ।
[७]चित्तं च [८]चितिस्च [९]नाम च [१०] क्रतुश्च [११]दर्शश्च [१२]पौर्णमासश्च ॥

प्रजापति र्जया निंद्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु ।
तेभिर्वाजं वाजयन्तो जयेम तेनेमा विश्वाः पृतना अभिष्याम ॥स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : [१]सङ्कल्प और [२] इच्छा, [३]ध्यान और [४]धारणा, [५]विज्ञान और [६]विचारशक्ति, [७]मन और [८]बुद्धि, [९]संज्ञा और [१०]ब्रह्म, [११]अमावस्या और [१२]पौर्णमासी ॥ (प्रजापतिः) प्रजा पालक परमात्मा ने (वृष्णे) देवसमुदाय के मुखिया (इन्द्राय जयेषु) इन्द्र को परसेनाओ को जीतने के कार्य में (जयान्) उक्त जया मन्त्रों के ज्ञान को (प्रायच्छत्) दिया, (तेभिः इन्द्रः उग्रः) उनसे परसेनाओं के परास्त करने में इन्द्रदेव समर्थ हुआ । अतः (वाजयन्तः) अन्न की इच्छा करने वाले हम भी (तेभिः वाजम् जयेम) उन मन्त्र शक्तियों द्वारा अन्न लाभ करें और (तेन विश्वाः पृतनाः) उन मन शक्तियों द्वारा सारी परसेनाओं को (अभिष्याम) परास्त या तिरस्कृत करें । इन जया संज्ञक ऋचाओं के बाद :

- **बृहस्पतिः पुरोहितेत्यऽभ्यातानां । तेजोसि । बृहस्पतिः पुरोहितामस्यांदेवहूत्यां स्वाहेतियावत् ॥** निम्न अभ्याता संज्ञक चार ऋचाओं से भी पूवोक्त प्रकार से चारबार स्रुव द्वारा स्रुच में एकत्रित किये गये घी को चतुर्थमन्त्र के 'स्वाहा' शब्द पर अग्नि में होम करे :

बृहस्पतिः पुरोहिता देवाः देवानां देवदेवाः प्रथमजा देवा देवेषु पराक्रमध्वम् ॥१ ॥
प्रथमा द्वितीयेषु द्वितीयास्तृतीयेषु त्रिरेकादश त्रियंस्त्रिशा अनु व आरभ ॥२ ॥ इदं शकेयं यदिदं करोमि ॥३ ॥
ते मामवत जनवितास्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्या पुरोधायामस्या देवहूत्यां स्वाहा ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : (बृहस्पतिः पुरोहिता देवाः) बृहस्पति को अग्रणी रखने वाले देवताओं । तथा (देवाः) अन्यदेवताओ ! (देवानाम्) देवताओं के (देवेषु) इन वैदिक यज्ञ कार्यों में (प्रथम जाः देवाः) प्रथम देव भाव को प्राप्त देवता और (देवाः) अन्यदेवता यज्ञ सिद्धि के लिए (पराक्रमध्वम्) समुद्यम करो ।॥१ ॥ (प्रथमा) प्रथम श्रेणी के (द्वितीयेषु) दूसरी श्रेणी के देवताओं में और दूसरे तीसरी श्रेणी के देवताओं से मिलकर समुद्यम करो । इस प्रकार की आप सारे (त्रिरेकादशशत्रयस्त्रिंशत) तिगुणे ग्यारहवा ३३ ही देवता मेरे इस आयोजित यज्ञ कार्य की सिद्धि के लिए सहायक बनो ॥२ ॥ (य इदं करोमि) ये जो कुछ मैं करता हूँ उसे पूरा करने में आप की कृपा से मैं (शकेयम्) समर्थ होओं ॥३ ॥ हे देवताओं ! (अस्मिन् ब्राहण्य) इस वैदिक अनुष्ठान में, (अस्मिन् क्षत्रे) इस बल साध्य कर्म में, (मां जिन्वत्) मुझ को सफल मनोरथ करो तथा (अस्यां पुरोधायाम्) इस पुरोहित कर्म में लगे हुए ब्राह्मणों से युक्त (अस्यां आशिष्यस्याम्) इस मंगलमयी यज्ञ वेदी में स्थित (माम अवत्) होकर मेरी रक्षा करो ॥४ ॥ इसके पश्चात्—

- **राष्ट्रभृतो— 'राष्ट्रभृतामोपनिषदानामृषीणाम्'** राष्ट्रभृत संज्ञक उपनिषदोक्त ऋषियों की : **ऋताषाढ़ ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातुतस्मै स्वाहा वट् ॥१ ॥ मन्त्रार्थ :** (ऋताषाढ़) सत्य को सहन करने वाला (ऋत-धाम, अग्निः) तेज का स्थान अग्निरूपी जो (गन्धर्व) गन्धर्व अर्थात् राष्ट्र धारक देवता है (सः नः ब्रह्मक्षत्रम्) वह हमारे ब्रह्म तथा क्षत्र बल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस अग्निरूपी गन्धर्व के लिए दी हुई यह हवि (स्वाहा वट्) सुहूत होवे और उसे वह गन्धर्व देव प्राप्त करे ॥१ ॥

तस्यौषधयोऽपसरसो मुदानाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : उस अग्निदेव की (औषधियः) औषधियां (मुदानाम अपसरसो) मुदा संज्ञक अप्सराऐं हैं उन के लिए दी जाने वाली हवि सुहूत होवे और वे इसे प्राप्त करें ॥२ ॥

सुषुम्णः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स नः इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥३ ॥

मन्त्रार्थः सुषुम्णा नाम वाली सूर्य की किरण से प्रकाशित जो चन्द्ररूपी गन्धर्व है वह शेष पूर्ववत् ॥

तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम तेभ्यः स्वाहा वट् ॥४ ॥

मन्त्रार्थः उस (चन्द्रमा) की भेकुरी नाम वाली (नक्षत्राण्यप्सरसो) तारिकारूपी अप्सराऐं हैं (तेभ्यः) उन अप्सराओं के लिए— शेष पूर्ववत् ॥४ ॥

संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः स नः इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥५ ॥

मन्त्रार्थः (संहितः) जगत् को संगठित करने वाला (विश्वसामा) समस्त तेज पुञ्ज जो सूर्यरूपी गन्धर्व है वह हमारे— शेष पूर्ववत् ॥५ ॥

तस्य मरीच्योऽपसर स आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥६ ॥

मन्त्रार्थ : उस सूर्यदेव की आयु नाम वाली (मरीच्यः) किरणों रूपवाली अप्सराऐं हैं उनके लिए.... शेष पूर्ववत् ॥६ ॥

भुज्यः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः सनः इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥७ ॥

मन्त्रार्थः (भुज्यः) प्रजापालक (सुपर्णा) शोभन गतिवाला जो यज्ञ रूपी गन्धर्व है वह हमारे...... शेष पूर्ववत् ॥७ ॥

तस्य दक्षिणा अप्सरस् तवानाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥८ ॥

मन्त्रार्थः उस यज्ञ की तवानाम वाली जो दक्षिणारूपी अप्सराऐं हैं— शेष पूर्ववत् ॥

प्रजापति विश्वकर्मा मनोगन्धर्वः स नः इदम् ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट ॥९ ॥

मन्त्रार्थः (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (विश्वकर्मा) समस्त कार्यों का कर्त्ता जो (मनः गन्धर्वः) मन रूपी गन्धर्व है (सः) वह (नः) हमारे (ब्रह्म) ब्रह्मबल तथा (क्षत्रम्) क्षात्रबल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस गन्धर्व के लिए दी गई यह हवि (स्वाहा वट्) सुहूत होवे और उसे मन रूपी गन्धर्व देव प्राप्त करे ॥९ ॥

- **'अग्निर्भूतानामेकविंशमाधिपत्यानि जुहोतिः'** पुनः वर निम्न अधिपति संज्ञक इक्कीस मन्त्रों का होम करे ॥यथाः

अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावतु तस्मै स्वाहा ॥१ ॥
यमः पृथिव्याधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२ ॥
वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥३ ॥
सूर्योदिवोऽधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥४ ॥
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥५ ॥
विष्णोर्दिशामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥६ ॥

पूषा पथिनामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥८॥
सविता प्रसवानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥९॥
इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१०॥
मित्रः सत्यानामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥११॥
वरुणो धर्मानामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१२॥
रुद्रा पशूनामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१३॥
बृहस्पति र्ब्रह्मणामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१४॥
ब्राह्मणो वाचामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१५॥
सोमो औषधीनामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१६॥
समुद्रः स्रवन्तीनामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१७॥
अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१८॥
गायत्रीच्छन्सामधिपत्नी, स माऽवतु तस्यै स्वाहा ॥१९॥
मरुतोगणानामधिपतिः, स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२०॥

मन्त्रार्थ : अग्निदेव जो (भूतानामधिपतिः) समस्त चराचर प्राणियों का नियन्ता है (सः) वह अग्निदेव (मा) मेरी (अवतु) रक्षा करे (तस्मै) उसके लिए यह हवि (स्वाहा) सुहूत होवे। यमदेव जो पृथ्वी का नियन्ता हैं, आकाश के नियन्ता जो वायुदेव हैं, द्यौलोकनियन्ताभगवान् भास्कर, नक्षत्रनाथ चन्द्रमा, दिशाओं के स्वामी विष्णुदेव, पथिकों के स्वामी पूषादेव, विश्वकर्मा जो सर्वाकृतियों के स्वामी हैं, अङ्कुराधिपति भगवान् सवितादेव, इन्द्र जो प्रशस्त पदार्थों एवं प्राणियों का स्वामी है, सत्यों का स्वामी मित्रदेव, वरुणदेव जो धर्मों का स्वामी है, पशुपति इन्द्रदेव, बृहस्पित जो ब्राह्मणों (वेदों) का स्वामी है, ब्राह्मण जो वाणी का, औषधियों का स्वामी सोमदेव, नदियों का स्वामी समुद्र, अन्न जो साम्राज्यों का स्वामी है, छन्दों की स्वामिनी माँ गायत्री तथा समस्तगणों के स्वामी जो प्राण हैं— ये सब उपर्युक्त देव जो अपने विशेष स्वामित्व के द्योतक हैं— मेरी रक्षा करें, इन सबके लिए मेरी यथा क्रम आहुति अर्पण है ॥

पितरः पितामहाः परेऽवरेभ्यस्ते नः पान्तु नोऽवन्तत्वऽस्मिन्,
ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२१ ॥

मन्त्रार्थः पितृ-पितामह आदि पितृगण (नः) हमारे (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस विवाह संज्ञक वैदिक (कर्मणि) कार्य में (अस्मिन्क्षत्रे) इस बल साध्य प्रजापालन यज्ञ में (अस्यां देवहूत्याम्) इस देवताओं के आह्वान और हविदान की भूमि (अस्यां पुरोधायाम्) इस पुरोहित कर्म में लगे हुए ब्राह्मणों से युक्त (अस्यां आशिष्याम्) इस मंगल कामनाओं की प्रदर्शक यज्ञ वेदि में (ते अवन्तु) वे आयें और वे (नः पान्तु) हमारी रक्षा करें, उन (परेभ्यः अवरेभ्यः) स्वर्गोत्पन्न हिरण्यगर्भ मनवादि तथा बाद में हुए पितृ पितामह आदि के लिए (स्वाहा) सुहूत होवे ॥२१ ॥

● **'आकूत्या इति त्रिभिस्त्वेत्यन्तैः'** आकूत्यै इन निम्नाङ्कित तीन मन्त्रों से 'त्वा' शब्द पर अग्नि में आहुति डालें— यथा :

आकूत्यै त्वा स्वाहा ॥२ ॥ कामाय त्वा स्वाहा ॥२ ॥ समृद्ध्यै त्वा स्वाहा ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : हे आज्य ! मैं तझे [१]अभिप्रायसिद्धि के लिए, [२]कामनाओं तथा धन धान्य एवं ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए होम करता हूँ ॥३ ॥

● **'हिरण्यगर्भ इत्यष्टभिः'** पुनः हिरण्यगर्भादि आठ यजुर्वेदीयमन्त्रों का घृत से होम करें,

हिरण्यगर्भः समऽवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१ ॥

मन्त्रार्थ : हिरण्यगर्भ परमात्मा जगत् रचना से (अग्रे सं अवर्तत्) पहले वर्तमान रहा, वही देव (भूतस्य पतिः जातः) सभी उत्पन्न जगत् का पालक हुआ, वह (एक आसीत्) एक (एकोब्रह्म) हीथा (पृथिवी उत) पृथिवी और (इमां द्याम्) इस प्रकाशमयलोकको (दधार) धारण करता है (कस्मै) किस अर्थात् जगत कर्ता देवता को हम (हविषा विधेम) हवि से सेवा करें ॥१ ॥ **यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।**

ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : (यः प्राणतः निमिषतः च) जो प्राण शक्ति सम्पन्न और आँखें झपकने आदि की क्रिया करने वाले तथा (विश्वस्य जगतः पतिः बभूव) जो सारा चराचर जगत् का स्वामी और पालक है । (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि दो पाये तथा (चतुष्पदः) पश्वादि चौपायों का (ईशः) स्वामी तथा शासक है ऐसे जगत् नियन्त देव की हम हवि से सेवा करें ॥२ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वस्तम्भितं येन नाकम् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : जिस परम देव ने द्यौलोक जैसे उन्नत और भूलोक को स्थापित किया, जिसने स्वर्गलोक और स्वर्ग को धारण किया है, जो विस्तृत अन्तरिक्ष लोक को धारण किये हुए है, ...शेष पूर्ववत् ॥३ ॥

य ओजदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ॥
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : जो उत्साह दाता तथा सामर्थ्यदाता है, जिसके अनुशासन को सारे लोक और देवगण मानते हैं । जिसका आश्रय वा आराधना अमृत वा मोक्षप्रद है तथा जिस का अनाश्रय या अनाराधना मृत्यु तुल्य दुःख का कारण है ......शेषपूर्ववत् ॥४ ॥

य इमे द्याव पृथिवी तस्तभाने अधारयद्रोधसी रेजमाने ।
यस्मिन्नधि विनतः सूर एति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५ ॥

मन्त्रार्थ : जो इन विद्यमान् आकाश और पृथिवी को दृढ़ता पूर्वक रोक कर धारण करता है जिसके ऊपर विनीत सूर्य देव भ्रमण करता है— शेष पूर्ववत् ॥५ ॥

यस्येमे विश्वे गिरियो महित्वा समुद्रे यस्य रसया सहाहुः ।
दिशो यस्य प्रदिशो पञ्चदेवीः कस्मै देवाय हविष विधेम ॥६ ॥

मन्त्रार्थ : जिस देव के महान सामर्थ्य को ये विशाल समस्त पर्वत और सागर पृथ्वी सहित बतलाते हैं । जिसके माहात्म्य को दिव्यगुण सम्पन्न ऊर्ध्व सहित पाँच दिशाऐं तथा पृथिवी सहित पाँच प्रतिदिशायें वर्णन करती हैं उस महिमामय भग सम्पन्न भगवान् की हम हवि द्वारा सेवा करें ॥६ ॥

आपो हयन् महतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां निरवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७ ॥

मन्त्रार्थः जिस काल में सृष्टि रचना से पूर्व बड़े जल समूह सब ओर व्याप्तथे, उन्होंने अर्थात् भगवान् नारायण (जल के ऊपर शेषशय्यासीन) ने गर्भ को धारण करते हुए अग्नि को उत्पन्न किया । तब वह एक अद्वितीय परमात्मा इन्द्रादिदेवताओं का प्राणरूप होकर विद्यमान हुआ—शेष पूर्ववत् ॥७ ॥

आनः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सरं ऋतुभिश्चक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥८ ॥

मन्त्रार्थ : प्रजापति हमारी प्रजा (सन्तान) को उत्पन्न करे और उसे प्रसन्नचित, सर्वव्यापक परमात्मा धारण-पोषण करे, ऋतुओं के साथ, वर्ष के रूप में विवर्त होने वाला वह बलवीर्य वर्धक देव मुझ में बलवीर्य को धारण करे जिस कारण मेरा इहलौकिक जीवन सुखशान्तिमय बनकर परलोक के लिए भी प्रशस्त बने ॥

ओ३म् भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : भूः, भुवः और स्वर्लोक की अधिष्ठात्री दिव्यशक्तियों के लिए सुहूत होवे ॥

नोट : उपर्युक्त ८ मन्त्रों का विस्तारभय से संक्षिप्त किन्तु सार गर्भित अर्थ बता दिया गया है साथ ही सभी धर्मकार्यरत आचार्यों से हमारा नम्र निवेदन है कि प्रत्येक यज्ञ कृत्य में उक्त मन्त्रों का होम अनिवार्यरूप से किया जावे ॥

- **"अग्ने इति त्रिभिराज्यं हुत्वायाते इति त्रिभिः स्वाहान्तैर्वध्वा मूर्धनि संपातानवनयेत्"**

भाषा : निम्नतीन पावमानी ऋचाओं का उच्चारण करके 'यांते पतिघ्नी०' आदि मन्त्रों के 'स्वाहा' शब्द के अन्त पर अग्नि में आज्य का होम करने से स्रुचा में जोशेष आज्य रहे उसे वधू के मस्तक पर टीका करे अथवा सिर पर प्रक्षेपन करे ॥

अग्न आयूंषि पवस आसवोर्जमिषं च नः आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।
या ते पतिघ्नी तनूरपतिघ्नीं ते वां करोमि स्वाहा ॥ स्वाइत्यग्नौ हा इति मूर्धानि ॥१ ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्निदेव ! आप (नः आयुषीम्) हमारी आयु को (पवस) पवित्र अर्थात् रोग-जरादि विकारों से मुक्त करो । (नः ऊर्जं च इषं आसुव) हमें बल और अन्न प्रदान कर तथा (दुच्छुना आरे बाधस्व) कुत्तों जैसे हिंसकस्वभाव वाले दुष्ट लोगों के बल पराक्रमादि को दूर से ही नष्ट कर दो । हे वधू ! (या ते तनूः) जो तेरी काया (पतिघ्नी) पति को मारने वाली हो तो मैं (तां अपतिघ्नी करोमि) उसे पति का नाश न करने वाली करता हूँ ॥१ ॥

अग्नि ऋषिः पवमानः पञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥
यातेऽपुत्रिया तनूः पुत्रियां करोमि स्वाहा । स्वाइत्यग्नौहा इति मूर्धनि ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : अग्निदेव प्रकाश पुञ्ज सबको पवित्र करने वाला, अनुलोमज सहित पाञ्च प्रजा के हितकारक, जो देवताओं के अग्रगणी हैं, उस महागृह के समान सर्वाश्रय अग्निदेव को हम (ईमहे) याचना करते हैं । हे कन्ये ! जो तेरी काया पुत्रों के लिए अहित कर हो तो मैं उसको इस वैदिक संस्कार से पुत्रोत्पादक करता हूँ ॥२ ॥

अग्ने पवस स्वपा अस्मै वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्।
या तेऽपशव्या तनूः पशव्या ते तां करोमि स्वाहा ॥स्वाइत्यग्नौहा इति मूर्धनि ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्निदेव ! तू शुभ कर्मों का कर्ता है अतः हमें तेज और उत्तमबल प्रदान कर तथा मुझमें ऐश्वर्य और शारीरिक बल प्रदान कर । हे वधू ! जो तेरा शरीर पशुओं के लिए हानिकारक हो तो मैं उस को पशुओं के लिए हितकारक करता हूँ ॥३ ॥

- **'अक्षतसूक्तूनांयागः । अग्निं पुष्टिपतिं प्रजापतिं च यजेत् ।"** इस स्थाल पर विवाह के प्रधान देवताओं के लिए पहले निर्वापण किया हुआ अक्षत सूक्तों काचरु निम्नमन्त्रों से अग्नि में होम करें :

अग्नये स्वाहा । पुष्टिपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : अग्नि, पुष्टिपति, प्रजापति के लिए सुहूत होवें ॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमं स्वाहा॥

मन्त्रार्थ : अग्निदेव के अनुग्रह से ही मनुष्य प्रतिदिन धन, शारीरिक पुष्टि, कीर्तिलाभ तथा वीरत्व प्राप्त करता है॥

प्रजापते न हि त्वदन्य एताविश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥स्वाहा॥

मन्त्रार्थ : पृष्ठ १३२ पर उक्त मन्त्र का अर्थ देखें॥

- **'उदग्रानदर्भानास्तीर्य तेषु प्राङ्मुखी वधूमऽवस्थाप्य प्रत्यडमुखस्तिष्ठन्नेव हस्तौ गृहणाति'** इस स्थल पर आचार्य, अग्नि के उत्तर दिग्भाग में पूर्व की ओर मुख किए हुई कन्या को उत्तर की ओर बिछाई दर्भा पर खड़ा कर और उसके आगे होकर उसका वर पश्चिम की ओर मुख करके ही वधू के दोनों हाथों को निम्नमंत्र पढ़ते हुए पकड़े :

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृहणमि॥

- **'इतिहस्तं गृहणति। दक्षिणमुत्तानं साङ्गुष्टं नीचारिक्तमरिक्तेनैव सव्यं सव्येन। गृब्णामीति चतुस्त्रो वरं वाचयति'**॥ उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर, कन्या का प्रसारित किया हुआ अंगुष्ठ सहित दक्षिण हाथ जो खाली न हो अर्थात् उसमें सोना चान्दी आदि कोई न कोई वस्तु हो, अपने उल्टा किये हुए दक्षिण हाथ से तथा इसी प्रकार दायें से दायें हाथ को पकड़े, फिर 'गृब्णामि' आदि निम्न चार मन्त्रों का पाठ करे॥यथा :

गृब्णामि ते सुप्रजस्त्वाय हस्तौ मयापत्या जरदष्टिर्यथा सत्।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धि र्मह्यं त्वा दुर्गार्हस्पत्याय देवाः॥१॥
यां पूषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्याः वपन्ति।
या न उरु उषती विश्रायते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषम्॥२॥

सोमो अददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो अदददग्नये।
रयिंच पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमऽथो इमाम्॥३॥

सोमः प्रथमो विवेद गन्धर्वो विवेद उत्तरः।
तृतीयोऽग्निष्ठे पतिस्तुरीयोऽहं मनुष्यजः ॥४॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! मैं जिस भावना से तेरे हाथों को अच्छी सन्तानोत्पति के लिए ग्रहण करता हूँ उसी प्रकार तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक सुख भोगने वाली हो। भग, अर्यम, सविता और पुरन्ध्रिदेवता लोग तुझे गृहस्थ धर्म चलाने के लिए मुझे देते हैं ॥१॥ हे पूषन देव ! तू इस परम कल्याणकारी वधू को गृहस्थ धर्म चलाने के लिए प्रेरित कर जिससे हम प्रेम बन्धन में बन्धकर कामरूपी पुरुषार्थ लाभ प्राप्त करें ॥२॥ सोमदेव ने कन्या को गन्धर्व के लिए दिया, गन्धर्वदेव ने अग्नि को और अग्निदेव अब इस कन्या को वधूरूप में मुझे देवे और साथ ही अग्निदेव मुझे धन और पुत्र भी प्रदान करे ॥३॥ हे वधू ! सोम देवता पहले तेरा पति हुआ उसके बाद दूसरा पति गन्धर्व देव, तीसरा अग्निदेव और अब चौथा पति मैं भूदेव (मनुष्य देव) हूँ ॥४॥

- **'ततो गाथा वरं वाचयति। सरस्वती प्रदमवेलि अनवाकावुभावित्येके'** इसके अनन्तर आचार्य वर से निम्न मन्त्रों का उच्चारण करावे। गन्धर्वों, अप्सराओं तथा राजर्षि आदि के चरित्र का मंगलगान गाथा कहलाता है :

सरस्वती प्रदमव सुभगे वाजनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रगायाम्यस्याग्रतः ॥१॥

मन्त्रार्थ : हे समृद्धि शालिनी अन्नपूर्णे ! सरस्वति ! इस समस्त संसार के पूर्व में स्थित तुझ को ध्याता हूँ अतः तू इस मंगलकृत्य की रक्षा कर ॥१॥

याग्रे सर्वं समभरद्यस्यां विश्विमिदं जगत्। तामद्यवाचं गास्यामि यास्त्रीणामुत्तमं मनः ॥२॥

मन्त्रार्थ : जो सब से पहले प्रकट हुई है, जिस पर यह सारा संसार आश्रित है उस वाग्रूपा सरस्वती की प्रशस्ति मैं आज गाऊँगा जो स्त्रियों की श्रेष्ठ इच्छाओं का प्रकाश है ॥२॥ **य इह पूर्वे जना असन्पूर्वे पूर्व तरेभ्यः। मूर्ध्वन्वांस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरादेवेभ्यः आतपत् ॥३॥** **मन्त्रार्थ :** इस जगत में जो पहले लोग थे, उन पहले लोगों से भी पहले के जो लोग थे, उसने और देवताओं से भी पहले मूर्ध्वन्वान नाम का गन्धर्व सरस्वती को प्रसन्न करने वाला प्रकाशित हुआ ॥३॥ **य एति सर्वतः प्राग्भ्योदिग्भ्योधि पवमानः। मूर्ध्वन्वांस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरादेवेभ्यः आतपत् ॥४॥**

मन्त्रार्थ : जो वायु सब ओर से अधिकता से पवित्र करता हुआ आता है अतः पूर्वादि दिशाओं से आने के कारण दिशा भेद से जो बहुत प्रकार से गतिवान् वायु होते हैं, उन वायु देवताओं से भी पहले—शेषपूर्ववत् ॥४॥

स भगवो न मरिष्यस्यहं चेदस्मि भेषजम्।
मूर्ध्वन्वांस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरादेवेभ्यः आतपत्॥५॥

मन्त्रार्थ : हे भगवन् (जीव) ! तू तब तक शरीर से वियुक्त नहीं होगा जब तक मैं प्राणवायु आरोग्य की शक्ति के रूप में इन्द्रियादि के साथ तेरे शरीर में हूँ। उन प्राण, इन्द्रियादि दिव्यशक्तियों से पहले—शेष पूर्ववत्॥

हिरण्यवर्णो वैरम्यः सत्त्वामन्मनसं करोतु।
यद्राजायाति समितिं समद्रुमिव सौभ्रुवः॥६॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! सुनहले वर्ण वाला जो वीरों के कर्म का रक्षक, शोभन भ्रूमध्य में योगियों को ध्यानगम्य होने वाला, सर्वेश्वर, सूर्य की तरह विशाल, सहनशीलता को प्राप्त होता है, वह प्रकृतगन्धर्व तुझ को मेरी प्रीति वाली करे॥६॥

न वा तस्याभिवायते नोद्वा तस्याभिधीयते।
न वा तस्य धुरं वहतु नोद्वा तस्यापमीयते॥७॥

मन्त्रार्थ : नाही वायु के आगे किसी भी देवता से जाया जाता है न आया जाता है। न उसके भार को कोई उठाने वाला है तथा ना ही उसकी गति किसी से रोकी जा सकती है।

आसद्यो हरितो रथः सौभ्रुवः सुहिरण्यः।
तेन वात इन्द्रजीय त्युद्वातो दृढया धुरः॥८॥

मन्त्रार्थ : सत्य प्रधान, हरित वर्षा, तेज सम्पन्न सूर्यरथ ध्रूसंयम से तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा भी दृष्टिगत होने में असम्भव है, उस आदित्यरथ को यह ऊर्ध्व गति वायु दृढ़ धुरा से चलाता है॥८॥

तवैव राजन्दुन्दुभ्यस्तव दुन्दुभिरानकः।
तव वातोद्वाता अश्वौ तव चित्ररथ वनम्॥९॥

मन्त्रार्थ : हे मूर्ध्वन्वान् गन्धर्व राज ! तेरा ही जय घोषकरने वाला यह ढोलनगारादि है। तिर्यग्गति और ऊर्ध्व गतिवायु तेरे दो घोड़े हैं तथा देवताओं का उद्यान भी तेरा ही है॥

ते शुक्रं शक्रस्याविन्दन्परञ्च निहितं गुहा।
मूर्ध्वन्वांस्तेभ्यो गन्धर्वः पुराजत्रुभ्य आवृदः ॥२० ॥

मन्त्रार्थः वे वायवादि देवता शक्र प्रजापति के अगोचर सामर्थ्य को माया प्रपञ्चरूपगुहा में निहित जानते हैं । उन देवता से पहले ही मूर्ध्वन्वान गन्धर्व सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय तक प्रजा की उत्पादन, पालन, प्रलय, सम्पादन शक्ति को जानता है ॥१० ॥

हिरण्यवर्णं सुभृतं शोभमानं, कन्याया हस्तं प्रतिगृह्य पुण्यम्।
सा पुत्रकामा सुभगाय भर्त्रे, भवेद् वशेयं गिरिवत्स्थिराय ॥१ ॥

छन्दार्थ : वर कहता है— हे मेरे अन्तरात्मन् ! सुनहले रंगवाला, पवित्र, सुन्दर आभरणों से युक्त और सुरम्य कन्या के हाथ को ग्रहण करके कर्त्तव्य में पर्वत की तरह स्थिरता के लिए शक्तिशाली हो और यह वधू भी सौभाग्य तथा मुझ पति के लिए सन्तान की कामना वाली होवे ॥१ ॥

वैरुम्पेमणिपर्वते गिरौ हरितसंकाशे।
संकल्प रमणेऽमरा उभौ सुमनसौचरावः ॥१ ॥

मन्त्रार्थ : हे वधू । वैरम्पनामवाले, मुनिजन सेवित, जहां सङ्कल्पमात्र से ही सब कामनाओं की पूर्ति होती है, उस संकल्प रमया सुवर्णमय पर्वत पर हम दोनों दम्पति देवता के होकर प्रसन्नचित हो संचरण करें ॥१ ॥

आणीव रथे वेष्टसि वने वारि वर्षिण्ये।
अप्सराः सूर्वर्चस्विनी वशिनीमन्मनाभूयाः ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! जैसे रथकष्टिका रथ में तथा विद्युत मेघ में तल्लीन रहती है वैसे तू मुझमें लीन हो । तू सौन्दर्य सम्पन्ना, तेजस्विनी, शक्तिशालिनी तथा मुझमें मन लगाने वाली होवे ॥२ ॥

याऽसा उपरि तिष्ठति वने वारि वर्षिण्ये।

वसुगा सूर्य वचंस्विनी वशिनी मन्मना भूयाः ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : जैसे विद्युत ऊपर बादलों में लीन रहती है वैसे ही तू भूगामिनी मुझ में तल्लीन हो— शेष पूर्ववत् ॥२ ॥

अश्वत्थक उपरिश्येनो रमणीयतरो नाम।

तस्मिन्ह्यरम्भा रमते शक्रइव परितर्क्ष्यमायाम् ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : वट वृक्ष के ऊपर श्वेत वर्ण रमणीयतर नाम का गन्धर्व रहता है, उस वृक्ष पर ही रम्भा नाम की अप्सरा भी क्रीड़ा करती है और वह गन्धर्व इन्द्र के सदृश्य रात्रि में विश्राम करता है ॥४ ॥

आस्यन्दमाना सुभगे निर्गिरिभ्या सरस्वति।

मातेव दुहितृभ्यः कुल्याभ्यो विभजावसु ॥५ ॥

मन्त्रार्थ : हे समृद्धिशालिनी सरस्वती नदी ! पहाड़ों से निकलने वाली तू बहती हुई माता के समान कन्या सदृश्य अन्य नदियों के लिए भी जल का विभाजन करे ॥५ ॥

मध्यं तंच्छन्दस आहुर्यत्रादधुर्नाम परेति देवाः।

अरुणपिशङ्गोऽश्वोस्य दक्षिणायस्तद्वेदस इहागन्तुमर्हति ॥६ ॥

मन्त्रार्थ : देवासुरों के छन्दसमूह के मध्यवर्ती वह अनुष्टुभरूपी सरस्वती है, ऐसा देवता लोग कहते हैं। जहाँ यह अनुष्टुभ नामवाली है वहां उसका मूलाधार में स्थित 'नादरूपिणीवाणी' यह नाम भी विद्वान लोग विहित कर चुके हैं। लाली लिए हुए भूरे रंग का घोड़ा इसकी दक्षिणा है जो उस अनुष्टुम नादरूपिणी वाणी को जानता है, वह इसमंगलमय विवाह यज्ञ में आ सकता है ॥

इषीक वर्णे लेखभूसुभगे सुस्मिते।

मूर्ध्वन्वांस्त्वागन्धर्वो सामभिर्नियच्छतु ॥७ ॥

मन्त्रार्थ : हे सरस्वती देवी ! तुझको दोनो-देवता और गन्धर्व लोग एक साथ होकर विविध आवाहन करते हैं। उनके मध्य में जिनको तू चाहती है, उनके साथ चली जा ॥८ ॥

अभ्यावर्तेऽहन्देवान् गायता कामयामहे ।
गायन्तं स्त्रियाः कामयन्ते न तथा ब्रह्मवादिनम् ॥९ ॥

मन्त्रार्थ : सरस्वती प्रत्युत्तर देती है— 'मैं गन्धर्व देवों के अभिमुख रहती हूँ । न तो हम गाने वालों को ही चाहती हैं । जैसे स्त्रियां गाते हुए वालों को चाहती हैं वैसे वेद पाठक को नहीं चाहती हैं ।९ ॥

याऽसा उपरि पर्वत आत्मना रममाणेव !
क्षौम मृद्वी ह वा असि त्वोत ओजसि शृणोमि ॥१० ॥

मन्त्रार्थः जो ऊपर पर्वत पर या मेघ में (क्षौममृद्वी) दुकूलवत् कोमला (आत्मना) अपने वाग्रूप या विद्युत रूप से (रममाणा इव) क्रीड़ा करती हुई सी हैं, हे वधू ! (सा) वे ही अन्य रूप में (ह) निश्चय ही तू (असि) है । (त्वा) तुझ को प्राप्त करके तुझसे (ऊतः) रक्षित किया हुआ मैं (ओजसि) बलवर्द्धक इस यज्ञ में, मैं निज कर्त्तव्यों को (शृणोमि) श्रवण करता हूँ ॥१० ॥

- **'यदि पृथक् तन्त्रं प्रदक्षिणामग्निमानीय, तत्रवोपविश्य संस्थापयेत्'—**

यदि पृथक तन्त्र में उद्वाह (कन्या सम्बन्धी संस्कार) कर्म किया जावे तो वर वधू को प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि के गिर्द लाकर जहाँ 'पाणिग्रहण' किया गया था— उसी स्थान पर दोनों को बिठाया जावे (अन्यथा बिठाने की कोई आवश्यकता नहीं) ॥

- **'तत् ऋतुतिथ्यादि तन्त्र समाप्ति'—** प्रथम तन्त्र की समाप्ति का शेष कृत्य आचार्य निम्न संज्ञापदों से ऋतु तिथ्यादि का होम कर के पूर्व तन्त्र की समाप्ति करे :

ॐ अग्नये स्वाहा, वसन्ताय स्वाहा । इन्द्राय स्वाहा, ग्रीष्माय स्वाहा ॥
मरुद्भ्य स्वाहा, वर्षाभ्यः स्वाहा । विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा, शरदे स्वाहा ॥
मित्र वरुणाभ्यां स्वाहा, हेमन्त शिशिराभ्याम् स्वाहा ॥१ ॥
ब्रह्मणे स्वाहा, प्रतिपदे स्वाहा । त्वष्ट्रेस्वाहा, द्वितीयायै स्वाहा ।
जनार्दनायस्वाहा, तृतीयायैस्वाहा । यमायस्वाहा, चतुर्थ्यै स्वाहा ।
सोमायस्वाहा, पञ्चम्यै स्वाहा । कुमारायस्वाहा, षष्ठ्यै स्वाहा ।
मुनिभ्यः स्वाहा, सप्तम्यै स्वाहा । वसुभ्यः स्वाहा, अष्टम्यै स्वाहा ।
पिशाचेभ्यः स्वाहा, नवम्यैस्वाहा । धर्माय स्वाहा, दशम्यैस्वाहा ।
रुद्रायस्वाहा, एकादश्यै स्वाहा । रतिभ्यः स्वाहा, चतुर्दश्यैस्वाहा ।
पितृभ्यः स्वाहा, अमायै स्वाहा । विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा पौर्णमायै स्वाहा ॥२ ॥

अग्नये स्वाहा, कृतिकायैस्वाहा। प्रजापतये स्वाहा, रोहिण्यै स्वाहा।
मरुद्भ्यः स्वाहा, इन्वकाभ्यः स्वाहा ॥ आदित्ये स्वाहा, पुनर्वसवे स्वाहा।
रुद्रायस्वाहा, बाहवे स्वाहा। बृहस्पतये स्वाहा, निष्याय स्वाहा।
सर्पेभ्यः स्वाहा, अश्लेषेभ्यः स्वाहा पितृभ्यः स्वाहा, मघाय स्वाहा।
भगायस्वाहा, पूर्वाभ्यः फाल्गुनीभ्यः स्वाहा। अर्यम्णे स्वाहा।
उत्तराभ्यः फाल्गुनीभ्यः स्वाहा। सवित्रे स्वाहा, हस्तायस्वाहा।
त्वष्ट्रेस्वाहा, चित्राय स्वाहा। वायवे स्वाहा, निष्ठायैस्वाहा।
इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा, विशाखायै स्वाहा। मित्राय स्वाहा, अनुराधाभ्यः स्वाहा।
इन्द्रायस्वाहा, ज्येष्ठायैस्वाहा। नैर्ऋतयेस्वाहा, मूलाय स्वाहा।
अद्भ्यः स्वाहा, पूर्वाभ्यः आषाढाभ्यः स्वाहा। विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वा०,
उत्तराभ्यः आषाढाभ्यः स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा, अभिजिते स्वाहा।
विष्णवे स्वाहा, अश्वत्थायस्वाहा। वसुभ्यः स्वाहा, श्रविष्ठाभ्यः स्वाहा।
वरणायास्वाहा, शतभिषजे स्वा०। अजैकपदेभ्यः स्वाहा, पूर्वाभ्यः
प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा। अहिर्बुध्न्याय स्वाहा, उत्तराभ्यःप्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा।
पूष्णे स्वाहा, रेवत्यै स्वाहा। अश्विनीभ्यः स्वाहा, अश्वयुग्भ्यां स्वा०।
यमाय स्वाहा, अपभरणीभ्यः स्वाहा ॥३ ॥

- अन्य चः तन्त्र की समाप्ति के समय जो ऋतु तिथि, नक्षत्र हो उन्हीं से सदेवता नाम लेकर होम करे। इस तन्त्र की समाप्ति पर विवाह (वर सम्बन्धी संस्कार) समाप्त होता है और उद्वाह (कन्या संस्कार) प्रारम्भ होता है ॥

- **'वर पक्षीय यजमान तिलकं कुर्यात्'** निम्नमन्त्र से वर पक्षीय यजमानादिका तिलक करें तथा रक्षा सूत्र आचार्य महोदय बान्धें :

मन्त्रार्थाः सफलासन्तु, पूर्णाः सन्तु मनोरथाः।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु, मित्राणामुदयस्तव ॥
जीव त्वं शरदः शतम्। अदीनास्यः शरदः शतम् ॥

॥अथोद्वाहः॥

- **'पुनरग्निं परि समुह्य, पर्युक्ष्य, परिषिच्य ९ परिस्तीर्य १६ लाजानां निर्वपणम्':**
  पुनः अग्नि का परिसमूहन्, पर्युक्षण, परिस्चिन कर तथा कुशाओं का परिस्तरण कर लाजाहोम किया जावे ॥ यथाः

ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्निं' परिसमूह्यामि, सत्यन्त्वर्तेन परिसमूह्यामि, ऋतसत्याभ्यां त्वा परिसमूह्यामि ॥ ऋतन्त्वा सत्येन पर्युक्ष्यामि, सत्यन्त्वर्तेन पर्युक्ष्यामि, ऋतसत्याभ्यां त्वा पर्युक्ष्यामि ॥ ऋतन्त्वा सत्येन परिषिञ्चामि, सत्यन्त्वर्तेन परिषिञ्चामि, ऋतसत्याभ्याम् त्वा परिषिञ्चामि ॥ (नौ बार जल का छिड़काव करना)

आदौ पञ्च पुनस्त्रीणि, त्रीणि पञ्च तथैव च ।
अध्वर्युः प्राङ्मुखो भूत्वा दद्यात्षोडशवैस्तरात् ॥

- उपरोक्त वाक्यों का उच्चारण करते हुए कुशाओं को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में ५/३/३/५ के क्रम से अग्नि के चारों ओर बिछायें । निर्वपण स्थान पर पक्षयागानुसार अगली क्रिया करें ॥

- **'इति लाजान् शमीपर्ण मिश्रान शूर्पे सपवित्रे तस्मिन्नेवाग्नौ संस्कृत्य चतुरञ्जुलीमात्रान् कल्पयेत्'**— शमीवृक्ष के पतों में मिलाया हुआ और उसी अग्नि पर तैयार करके पवित्र शूर्प पात्र में धरकर चार अञ्जुली प्रमाण लाजाओं का पुरोडाश इस संस्कार के प्रधान देवताओं के लिए सङ्कल्प किया जावे । यथा :

इदमर्यम्णे, इदं गन्धर्वाय, इदं त्र्यम्बकाय ॥

- **'आज्यभागन्तं हुत्वा'** पश्चात् आज्यभागन्त पक्षयाग होम करके पूर्व कथित विधान से ही निम्न मन्त्रों से हवन करें :

ओ३म प्रजापतये स्वाहा (इतिमनसः) ॥ ॐ इन्द्रांयस्वाहा (इत्याघारो)
ओ३म् अग्नये स्वाहा । ॐ सोमायस्वाहा ॥

॥ य इमे द्यावा इतिचतस्त्रः ॥

य इमे द्यावा पृथिवी तस्तभाने, यद्रोधसी रेजमाने।
यस्मिन्नधि विनतः सूरपति, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१ ॥
यस्ये मे विश्वे गिरियो महित्वा, समुद्रे यस्य रसया सहाहुः।
दिशो यस्य प्रदिशाः पञ्च देवी, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२ ॥
आपो हयन् महती विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां निवर्तता सुरेकः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३ ॥
आनः प्रजान् जन्यन्तु प्रजापति, धाता दधातु समुनस्यमानः
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो, मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥४ ॥

ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा ॥ ॐ स्वः स्वाहा ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥
अग्न आयुंषि पवस आसवोर्जिमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
अग्नि ऋषि पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ॥
या ते अपुत्रीया तनूः पुत्रीयां ते तां करोमि स्वाहा ॥
अग्ने पवस स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद् रयिं मयि पोषम् ॥
या तेऽपशव्याः तनूः पशव्यां ते तां करोमि स्वाहा ॥
अग्ने जनिविदे स्वाहा। सोमाय जनिविदे स्वाहा। गन्धर्वाय जनिविदे स्वाहा ॥
आयुषाः प्राणं सन्तनु स्वाहा। प्राणाद् व्यानं सन्तनु स्वाहा ॥
व्यानाद् अपानं सन्तनु स्वाहा। अपानाच्चक्षु सन्तनु स्वाहा ॥
चक्षुषः श्रोत्रं सन्तनु स्वाहा। श्रोत्राद् वाचं सन्तनु स्वाहा ॥
वाचात्मानं सन्तनु स्वाहा। आत्मनः पृथिवीं सन्तनु स्वाहा ॥
पृथिव्यान्तरिक्षं सन्तनु स्वाहा। अन्तरिक्षाद् दिवं सन्तनु स्वाहा ॥

दिवः स्वः सन्तनु स्वाहा ॥

॥तेजोऽसि द्वादशगृहीते नाज्येन होमः ॥

[१]आकूतं च [२]आकुतिश्च, [३]आधीतं च [४]आधीतिश्च, [५]विज्ञातं च [६]विज्ञातिश्च, चितं च [८]चित्तिश्च, [९]नामच [१०]क्रतुश्च, [११]दर्शश्च, [१२]पौर्ण मासश्च, प्रजापतिर्जयानिंद्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाझ्रयेषु तेभि, र्वाजं वाजयन्तो जयेम ते नेमा विश्वाः पृनना अभिष्याम स्वाहा ॥

॥तेजोसि । चतुर्गृहीतेनाभ्यातानां होमः ॥

बृहस्पतिः पुरोहितः देवाः देवानां देवादेवाः प्रथमजादेवादेवेषु पराक्रमध्वम् ॥
प्रथमा द्वितीयेषु द्वितीयास्तृतीयेषु त्रिरेकादशत्रियंस्त्रिशा अनु व आरभ ॥
इदं शकेयं यदिदं करोमि ॥३ ॥ ते मा वत जन्वितास्मिन्—
ब्राह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्या पुरोधायामस्या देवहूत्यां स्वाहा ॥४ ॥

॥राष्ट्रभृतानां देवानां होमः ॥

ऋताषाड् ऋतुधामाग्नि गन्धर्वः सन इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥१ ॥
तस्यौषधियोऽपसरसो मुदानाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥२ ॥
सुषुम्पाः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स न इदं, ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥३ ॥
तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरर्यो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥४ ॥
संहितो विश्वसामा सूर्यागन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥५ ॥
तस्य मरीचयोऽपसरस् आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा वट ॥६ ॥
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट ॥७ ॥
तस्य दक्षिणा अप्सरस् तवा नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥८ ॥
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥९ ॥

तस्य ऋक्सामान्यऽप्सरस् इष्ट्यो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥१० ॥

इषिरा विश्व व्यचा वातो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥११ ॥

तस्यापोऽप्सरस् ऊर्जो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥१२ ॥

स नो भुवनस्यपते यस्य त उपरिगृहा विराट् पते अस्मैब्रह्मणेऽस्मैक्षत्राय महिशर्मयच्छ-स्वाहा ॥१३ ॥

(अग्निर्भूतानामधिपतीत्येक विंशत्याधिपत्यानि जुहुयात् ॥)

अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१ ॥

यमः पृथिव्या अधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२ ॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥३ ॥

सूर्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥४ ॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥५ ॥

विष्णोर्दिशामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥६ ॥

पूषा पथीनामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥७ ॥

त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥८ ॥

सविता प्रसवानामधिपतिः समाऽवतु तस्मै स्वाहा ॥९ ॥

इन्द्रो ज्येष्ठा नामधिपतिः सा माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१० ॥

मित्रः सत्यानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥११ ॥

वरुणो धर्माणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१२ ॥

रुद्रः पशुनामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१३ ॥

बृहस्पति र्ब्रह्माणामधिपति स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१४ ॥

ब्राह्मणो वाचामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१५ ॥

सोमा औषधीनामधिपति स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१६ ॥

समुद्रः स्त्रवन्तीनामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१७ ॥

अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१८ ॥

गायत्री छन्दसामधिपत्नी सा माऽवतु तस्यै स्वाहा ॥१९ ॥

मरुतो गणानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२० ॥

पितरः पितामहाः परवरेभ्यस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्त्वऽस्मिन्

ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यास्या देवहूत्यां स्वाहा ॥२१ ॥

॥हिरण्यगर्भेतिचतस्त्रः इत्यन्नं जुहुयात् ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् ।
सादा धार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१ ॥

यः प्राणतो निमिषतश्च राजापतिर्विश्वस्य जातो बभूव ।
ईश्यो अस्य द्विपदश्चतुश्पदः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥२ ॥

य ओजदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी दृढा येन सुस्तम्मितं येन नाकम् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : उक्त सभी मन्त्रों का अर्थ पूर्व तन्त्र में दिया गया है । यहां तक हवन करें ॥

- **'उत्तरेणाग्नि वधुवरावानीय पश्चादग्रेदर्भेषु विनिहित चरणौ वधुवरौ कृत्वा 'सात्वमसि० "इति वरं गुरु वाचयति"** अग्नि के उत्तर भाग से वर और वधू को लाकर फिर पश्चिम दिग्भाग में बिछी हुई दर्भा पर उनके पाँव रखवाकर— गुरु वर से 'सा त्वमसि०' इस मंत्र को कहलवाये :

सा त्वमऽस्यऽमोऽहमऽमोऽहमऽस्मि सा त्वं ता एहि विवाहा वहै ।
पुँसे पुत्राय कर्त्तव्ये रायस्पोषाय सुप्रजस्त्वाय सुवीर्याय ॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! तुम ऋग् और मैं साम हूँ । मैं साम और तू ऋग् है— यहाँ आ- और हम दोनों विवाह करें : पुत्रोत्पति के लिये, धन वृद्धि के लिए तथा भली सन्तान के लिए और अच्छे औजस्व के लिए ॥

- **इत्यग्निमभिदक्षिणमानीय उभौ प्राङ्मुखाववस्थाप्य, दक्षिण पदाऽश्मानमा—स्थापयति वरः** पश्चात अग्नि की परिक्रमा कराते हुए वर-वधू को दक्षिण विभाग से लाकर पश्चिमदिग्भाग में स्थापित किये हुए पत्थर पर निम्नमन्त्रोच्चारण करके पहले वर के दाँये चरण को ठहरावे :

एह्यश्मान मातिष्ठाश्मेव स्थिरो भव।

कृण्वन्तु विश्वेदेवाः आयुस्ते शरदः शतम् ॥

मन्त्रार्थ : हे वर ! आओ और इस पत्थर पर स्थिर होवो तथा पत्थर की तरह ही अपने कर्त्तव्य में दृढ़ हो जाओ। समस्त देवगण तेरी आयु सौ वर्ष करें ॥

- **तत्पश्चात् आचार्य निम्नमन्त्र बोलते हुए वधू का दक्षिणचरण भी पत्थर पर ठहरावे :**

आतिष्ठेममऽश्मानमऽश्मेव त्वं स्थिरो भव।

प्रमृणीहि दुवस्यवः सहस्व पृतनायतः ॥

मन्त्रार्थ : हे (शक्तिरूपा) वधू ! इस अश्म पर स्थिर हो, इसी तरह ही तू भी अपने कर्त्तव्य में स्थिर हो जा। उपद्रव चाहने वाले शत्रुदल का नाशकर तथा सेना के इच्छुक युद्ध चाहने वालों को पराजित कर ॥

- **ततो वध्वाअञ्जला ऋत्विगाज्यस्योपस्तृणाति। इदं हविरिति लाजान् वरोऽभिमृशतिः** इसके बाद आचार्य वधू की अञ्जुली पर घृत का लेपकरे। फिर वर निम्नमन्त्र से लाजाओं का अग्नि में अभिमर्षन (प्रेक्षपन) करे :

इदं हविः प्रजननं में अस्तु दशवीरं सर्व गणं स्वस्तये।
आत्मसनि, प्रजासनि, पशुसनि, लोकसन्यभिसनि, अग्नि प्रजां बहुलां
मे करोत्वन्नं पया रेतो अस्मासु धत्त ॥

मन्त्रार्थ : लाजासमूह युत यह हव्य मेरे दशवीरों को उत्पन्न करने वाला तथा मेरे कल्याण के लिए होवे। यह अपने आपको प्रदान करने वाला, सन्तानदायक, पशु प्रदायक, उत्तम लोक का लाभ कराने वाला तथा अभय दान देने वाला हो। अग्नि देव मेरी बहुत प्रजा उत्पन्न करे और इस यज्ञ द्वारा हमें अन्न, दूध तथा बल प्रदान करावे ॥

॥लाजाहोम ॥

- **"अथास्यै शमीलाजान् वपति, शमी पत्रमिश्राण लाजान अञ्जुलिना प्रजापत्यर्थेन वपति भ्राता ब्रह्मचारी वा"** अर्थात् वधू का भ्राता वा सहोदर भ्राता के अभाव में निकट सम्बन्धी भ्रातृतुल्य कोई ब्रह्मचारी (भाषाया 'लाज़भॉय') वधू की अञ्जुली में शमी पत्र मिश्रित लाजाओं को प्रजापति हेतु फैंके।

- **तानऽविच्छिन्दति। जुहोति 'अर्यमणं नुदेवमिति' वदन्ति वधूर्लाजान् जुहोति ॥** अर्थात् वधू लाजाओं को भ्राता द्वारा ग्रहण कर (उपर्युक्त ढंग से) 'अर्यमणमादि' मन्त्र से उन लाजाओं को पृथक न करती हुई यानि एक साथ अग्नि में होम कर दे ॥ यथाः

अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत
सोऽस्मान् देवो अर्यमा प्रेतो मामऽमुष्य गृहेभ्यः स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : अयर्मन् (सूर्य वा पितरों के प्रधान देव) अग्निदेव को निश्चय ही कन्यायें पूजती हैं। वह स्मरण किया हुआ अर्यमन् देव हमको (अमुष्य) अमुक नाम वाले वर के घरों से अलग मत करे ॥ **'वरस्य षष्ठ्यन्तं नाम गृहणति वधूः'** अर्थात् वधू उपर्युक्त मन्त्र में प्रयुक्त 'अमुष्य' शब्द के उपलक्ष्य में वर का नाम षष्ठी विभक्ति में बोले ॥

- पुनः आचार्य वर से निम्नमंत्र का उच्चारण कराते :

अग्निर्मा जनिमानऽनया जनिमन्तं करोतु। जीव पत्निर्भूयासम् ॥

मन्त्रार्थ : अग्निदेव जाया वाले हैं अतः मुझ को इस वधू के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध द्वारा स्त्री वाला करे और मैं जीवित पत्नी वाला होऊँ ॥

- इसके पश्चात् वधू निम्न मन्त्र बोले। यह मन्त्र लाजाहोम की सारी परिक्रमाओं में इसी प्रकार प्रयोग में लाया जावे—

इयं नार्युपब्रूते—तोक्मान्यावपन्तिका।
दीर्घायुः अस्तु मे पति रेधन्तां ज्ञातयो मम् ॥

मन्त्रार्थ : लाजा होम करने वाली यह स्त्री कहती है— मेरा स्वामी लम्बी उम्र वाला होवे और मेरे सम्बन्धी लोग वृद्धि को प्राप्त होवें ॥

● **एवं द्विरुत्तरंपर्ययणं लाजा होमं यजमानं चाश्मानं चास्थापयति ॥**

भाषा : इस प्रकार पूर्व वर्णित विधि से ही पुनः यह कृत्य दो बार करना चाहिए। दूसरी बार अग्नि की परिक्रमा वर-वधू से हो जाने पर आचार्य पुनः यज्ञकर्मा और पत्थर का स्थापन आदि कृत्य यथावत सम्पादन करवाकर वर के दाँये चरण को निम्नमन्त्र से पत्थर पर स्थापित करावे :

एह्याश्मानमातिष्ठाश्मेव स्थिरो भव।
कृण्वन्ति विश्वेदेवाः आयुस्तेशरदः शतम् ॥

● पुनः निम्नमन्त्र से वधू का दाँया चरण भी अश्म पर स्थापित करावेः

आतिष्ठेममऽश्मानमऽश्ममेव स्थिरो भव।
प्रमृणीहि दुषस्यवः सहस्व पृतयन्तः ॥

● तत्पश्चात् वधू निम्नमन्त्रोच्चारण करके लाजा का होम पूर्व वर्णित विधि से ही करे :

गन्धर्व पति वदेनं कन्या अग्निमयक्षत।
सोऽस्मान् देवो गन्धर्वः प्रेतो मुञ्चातुमामऽमुष्यगृहेभ्यः स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : पति की उपलब्धि कराने वाला गन्धर्वरूपी अग्निदेव को कन्याऐं पूजती हैं वह स्मरण किया हुआ गन्धर्व देव अमुक नाम वाले वर के गृहों से पृथक् न करे ॥

● इसके बाद वर निम्न मन्त्र का उच्चारण करे :

सोमो मा ज्ञातिमानऽनया ज्ञातिमन्तं करोतु। जीवपत्नीर्भूयासम् ॥

मन्त्रार्थ : सोम देवता ज्ञाति वाला अर्थात् सम्बन्धियों वाला है फलतः मुझे भी इस वधू द्वारा परिवार वाला करे । उस देव की कृपा से मैं जीवित स्त्री वाला होऊँ ॥

- फिर वधू निम्न मंत्र बोलकर वर सहित अग्नि की तृतीय परिक्रमा करे :

इयं नार्युपब्रूते —तोक्यमान्या वपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु में पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम ॥

- परिक्रमा की समाप्ति पर जब पूर्ववत् पत्थर पर पैर धरने आदि का कृत्य समाप्त हो जावे तो वधू पूर्वोक्त विधि से ही निम्नमन्त्रोच्चारण कर तीसरी बार लाजाये फैंके :

त्र्यम्बकं यजमाहे सुगन्धिं पतिपोषणम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुखीय माऽमुष्य गृहेभ्यः स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : पति का पालन करने वाले त्रिनेत्र, देवाधिदेव भगवान् शङ्कर का हम (स्त्रियाँ) पूजन करती हैं । उस भगवान् आशुतोष के प्रसाद से मैं (वधू) मृत्यु के बन्धन से करकरी फल के सदृश्य— जैसे वह सुगमता से बन्धन मुक्त होता है वैसे ही मुक्त होऊँ । साथ ही अमुक नाम वाले इस वर के घरों से सदा सर्वदा बन्धी रहूँ, कभी मुक्त न होऊँ ॥

- इसके पश्चात् वर निम्न मन्त्र बोले :

पूषा मा पशुमानऽनया पशुमन्तं करोतु । जीव पत्नीर्भूयासम् ॥

मन्त्रार्थ : पूषा देवता पशु धन वाला है अतः मुझे इस वधू के सहयोग द्वारा पशुओं वाला करे । उस देव की अनुकम्पा से मैं (वर) जीवित पत्नी वाला बनूँ ॥

● एक बार फिर वधू निम्न मन्त्रोच्चारण करे :

इयं नार्युपब्रूते—तोक्मानयावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम ॥

● **'नात्र प्रदक्षिणम्— तत उपविश्य'** अर्थात् यहाँ परिक्रमा समाप्त हो जाती है। फिर वर-वधू अपने-अपने स्थान पर बैठ जावें ॥

● **मरुता वातहोमाश्च, लाजा होमाश्च नित्यशः।**
आसीनेन न होतव्या, आचारो दक्षिणस्तथा ॥

छन्दार्थ : 'शुक्र ज्यातिश्च०' इत्यादि मरुतहोम, समुद्रो नभसा' आदि वात होम, लाजा होम, प्रदक्षिणा आघार सम्बन्धित होम— उक्त चार प्रकार के होम सदैव खड़े होकर होमने चाहियें ॥

● इसके बाद आचार्य ऋतु-तिथि आदि (पृष्ठ संख्या १४७) तथा अग्रिम निम्नलिखित उपहोम क्रिया सम्पन्न करावे ॥

॥अथोपहोमः ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पुरुषः।
इह सहस्रदक्षिणो रायस्पोषः प्रजायतां स्वाहा ॥१ ॥

मन्त्रार्थ : हे धेनुवो। हे अश्वो ! हे पुरुषो ! यहां यजमान के घर में प्रादुर्भूत होवो तथा यहां सहस्रो यज्ञों के सम्पादन योग्य धन का बल उत्पन्न होवे— इसके लिए सुहूत होवे ॥

अयं यज्ञो वर्धतां गोभिरश्वैरियं वेदिः स्वपत्या सुवीरा।
इदं बर्हिरति बहिष्यन्येयं यज्ञं विश्वे अवन्तु देवाः ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : यह वर्तमान यज्ञ गायों के दूध, घी आदि पदार्थों तथा घोड़ों द्वारा भार वहनादि कृत्यों से वृद्धि को प्राप्त होवे। यह वेदी बालकों तथा सुवीरों से सुरक्षित रहे। यह दर्भा अन्य दर्भाओं का अतिक्रमण करके विस्तार को प्राप्त होवे तथा इस यज्ञ की सारे देवता लोग रक्षा करें ॥२ ॥

आनः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धात्। दधातुसमुनस्यमानः।
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥३ ॥
अग्निर्मूर्धा ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वते ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : तृतीय का अर्थ पहले लिखा जा चुका है ॥३ ॥ यह अग्निदेव दिव्य लोकों में सूर्यादि के रूप में उन्नत तथा शिर के समान सर्वोपरि विराजमान है। यह पृथिवी पालन तथा जलों की जनन शक्ति का चयन करता है ॥

उभा वामिन्द्राग्नि आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारा विषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥५ ॥

मन्त्रार्थ : हे इन्द्राग्नि देवताओं ! आप अन्न-धन के देवता हो, मैं तुम दोनों से निवेदन करता हूँ कि आप मिलकर हुत भक्षण करें, यज्ञीय पदार्थों का सुखास्वादन करने के लिए तथा अन्न और बल प्रदानार्थ इस यज्ञ में आवें। मैं आप दोनों को सम्मानपूर्वक मंत्रित करता हूँ ॥५ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमऽप्तवानो भृगुवो विरु रुचुर्वनेषु चित्रं विभवं विशे विशे ॥६ ॥

मन्त्रार्थ : सबसे अधिक पूज्य, यज्ञों में प्रशंसनीय, यह देवताओं का ऋत्विज अग्निदेव, प्रजापतियों द्वारा इस जगत में सृष्टि रचना से पूर्व प्रतिष्ठापित किया गया, जिस अद्भुत शक्तिशाली प्राणीमात्र में जठराग्नि के रूप में सर्व्यापक अग्नि को भृगुगोत्रिय अप्तवान प्रभृति ऋषियों ने जंगलों में प्रदीप्त किया या जिस अग्नि को तापस एवं उत्तम कर्मा याज्ञिक लोग प्राणी मात्र के हितार्थ बनों में प्रज्वलित करते हैं ॥६ ॥

अयं ते योनि ऋत्वियो यतो जातो अरोचथः।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥७ ॥

मन्त्रार्थ : अग्निदेव ! यह पृथिवी ऋतु काल सम्बन्धी तेरी उत्पत्ति का साधन है, जिससे प्रकट हुआ तू विशेष देदीप्यामान हुआ। हे अग्निदेव ! उस योनि को जानता हुआ अरणि अथवा पृथिवी पर स्थिर हो और तदनन्तर हमारी धन वृद्धि कर ॥७ ॥

उप प्रयन्तो अध्वरो मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते ॥८॥
अस्य प्रत्नामनुधुतं शुक्रं दुदुह्वे अह्वयः। पयः सहस्त्रसामृषिम् ॥९॥
कदाचनस्तरीरसिनेन्द्र सश्चसिदाशुषे। उपायेन्नु मघवन् भूय इन्नुते दानं पृच्यते ॥१०॥
परिते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः ॥११॥

मन्त्रार्थ : उपासना करते हुए हम लोग, समीप और दूर हमारी प्रार्थना सुनने वाले, अग्निदेव की स्तुति के लिए यज्ञ सम्बन्धी अथवा शान्तिदायक वेद मन्त्र का उच्चारण करें ॥८॥ सत्कार्यों में किसी प्रकार की लज्जा वा प्रमादन करने वाले सत्पुरुष इस अग्निदेव के पुरातन द्योतमान् हज़ारों कार्यों के साधक तेज से शुक्ल पदार्थ दर्शिका शक्ति को प्राप्त करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र देव ! तू कभी भी हिंसक नहीं है अथवा बाँझ गायकी तरह अदानशील नहीं है। यजमान के लिए निश्चय ही सदा सुख प्रदान करता है। हे मघवन् (इन्द्र) तुझ दानशील का दान निश्चय ही हमें बार-बार प्राप्त होता है ॥१०॥ हे इन्द्र ! दुष्टों को दमन करने वाला वह दृढ़ रथ हम को सब ओर से प्राप्त हो जिस रथ से तू यजमानों को रक्षा प्रदान करता है ॥११॥

- **'प्राक् स्विष्टकृतदेवताभ्यो बलिमुहपहरेत्'** इस स्थल पर आचार्य सविता के मंत्र से यज्ञ के **प्रधान देवताओं को बलि प्रदान करे— यथा :**

ॐ सावित्राणि सावित्रस्य देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। अग्नये, पुष्टिपतये, प्रजापतये विवाह देवताभ्यः नमो नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥१॥

अर्यम्णे, गन्धर्वाय, त्र्यम्बकाय उद्वाहदेवताभ्यः नमो नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥२॥

॥अथ स्वेष्टकृत होमः॥

इळामग्ने पुरुदसं सनिं गोः शश्वत्तमां हवमानायसाध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो बिजावाग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मैस्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्निदेव ! यज्ञकर्ता यजमान के लिए अनेक कार्यों को पूर्ण करने वाले अन्न और गौ आदि पशुओं के विभाग को सदा के लिए सिद्ध अथवा उन्नत करा हमारे वंश का विस्तार करने वाला पुत्र विजयशील हो। हे अग्निदेव ! वह तेरी सद्भावना हमारे हित के लिए हो ॥

- **'शिष्टान्सिवष्टकृत लाजान जुहोति कर्ता शूर्पेण'**— स्विष्टकृत संज्ञक इस होम में कर्ता अर्थात् वधू द्वारा शेष बची हुई लाजाओं को शूर्प से अग्नि में होम करे ।

- **'हुतमेक्षणमनुप्रहृत्य हविरुच्छिष्टमुद्वास्य'**— आचार्य इस स्थल पर चरु के पकाने में प्रयुक्त की हुई मेक्षण (हवि) को अग्नि में डाल कर हुत शेष को अग्नि की उत्तर दिशा से उठा कर अग्नि के गिर्द परिक्रमा के क्रम से घुमाते हुए आज्यपात्र के आगे से लेजा कर पुनः अग्नि के उत्तर की ओर कुशस्तर पर रख दे । यज्ञ की समाप्ति पर यह हुत शेष नैवेद्य के रूप में बाँटे । ।

॥अथ शेषहोमः ॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवयासि सीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रभु मुग्धयस्मत् ।।१ ॥

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोतीने दिष्टो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्वनो वरुणं रराणो वीहि मळीकं सुहवो न एधि ।।२ ॥

अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशास्तिश्च सत्यमित्वमऽया असि ।
आया सा मन सा कृतोऽस्यासन् हव्यमूहिषेऽयानो धेहि भेषजम् ।।३ ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्निदेव ! तू सब बातों का ज्ञाता, सर्वाधिक पूज्य, हविस्थवहन के भार को उठाने वाला तथा अत्यन्त प्रकाशमान है, हमारे कार्य वैगुण्य यदि देव गुण सम्पन्न इस यज्ञ में वरण किये गये आचार्य का कोई अनादर हुआ है तो उसे दूरकर हम से समस्त द्वेष भावों को हटा दे ॥१ ॥ हे अग्निदेव ! रात्रि के व्यतीत होने पर, इस प्रभात वेला में, वह तू निकटवर्ती अथवा रक्षक के रूप में हमारी रक्षा के लिए समीपस्थ हो और हमें वरण किये जाने योग्य पदार्थ प्रदान करता हुआ अपने आप को यज्ञ कर्म में जोड़े रख तथा हमारे इस सुखकारी यज्ञ को प्राप्त कर और हमारे लिए सुख पूर्वक बुलाने योग्य हो ॥२ ॥ हे अग्नि देव ! तू अया नाम वाला है और पाप रहित तथा अति गतिशील है क्योंकि तीव्र गति वाले मन द्वारा प्रजापति ने तुझे उत्पन्न किया है । अतः तू गतिशील हुआ देवताओं की हवि को वहन कर अति गति सम्पन्न हुआ, हमारे लिए कर्म-वैराग्य निवारक औषध प्रदान कर ॥३ ॥

ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥
न्यूनमतिरिक्ते जुहोमि स्वाहा। अतिरिक्तं न्यूने जुहोमि स्वाहा।
समं समे जुहोमि स्वाहा ॥१ ॥

अना ज्ञातं यथा ज्ञातं, यद्यज्ञे क्रियते मिथः।
सर्वं तदग्न कल्पय, त्वं हि वेत्थ यथा यथम् ॥२ ॥
स्विष्टिश्चापि दुःरिष्टिश्च, ये यज्ञमभिरक्षतः।
प्रयाजानन्यानः पातु, यज्ञमन्यभिरक्षतु ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : इस यज्ञ में जो कर्म मैंने न्यून किया है उसके अधिकत्व निमित्त यह होम करता हूँ जो अधिक किया हुआ है उसकी समता निमित तथा जो सम किया है उस की समायत्व निमित यह होम करता हूँ ॥१ ॥ मुझ में ठीक तरह जो जाना हुआ है तथा जो कम जाना हुआ है, जो इस यज्ञ में एकान्ततः मैंने कर्म किया है, हे अग्नि देव ! वह सब तू पूर्ण कर क्योंकि तू ही यथावत् विधि को जानने वाला है ॥२ ॥ प्रजापति देव की विद्या एवं अविद्या रूपी दिव्य शक्तियां जो यज्ञ का अभिरक्षण करती हैं, उनमें से कोई एक शक्ति हमारे अमावस्या-पूर्णिमा सम्बन्धी यज्ञों की रक्षा करे और दूसरी प्रकृत यज्ञ का अभिरक्षण करे ॥

आश्रा वितमऽत्याश्रावितं, वषट् कृतमऽवषट् कृतम्।
अननूक्तम ऽत्यननूक्तं, च यज्ञेऽतिरिक्तं यच्च हीनम्,
अग्निष्टानि प्रवेदन्नेतु कल्पयन् स्वाहा ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : इस यज्ञ में जो देवता सम्बन्धी वर्णन— जो कम सुना हुआ वा आवश्यकता से अधिक सुनाया हुआ, हवि का आज्य कम टपकाया हुआ या अधिक टपकाया हुआ, मन्त्रों में स्वाहाकार अधिक व न्यून प्रयोग किया हुआ तथा अनुवाक्य विहीनता आदि यज्ञ कर्म का जो अधिकत्व वा हीनत्व हुआ है— अग्निदेव उन सारी उपर्युक्त त्रुटियों को जानता हुआ और उनका निराकरण करता हुआ आवे ॥४ ॥

- **'वि ते मुञ्चामि इति सन्नहनं विमुञ्चेत् ॥ तूष्णीं हस्तौ विमुच्य'**—चुपचाप वर प्रथम पकड़े हुए वधू के हाथों को छोड़कर 'वि ते मुञ्चामीति' मंत्र से 'सन्नहन' (कसकर बांध हुआ रूमालादि) खोल देवे ॥ **विशेष :** देशाचारानुसार इस स्थल पर कन्या पक्षीय आचार्य वर पक्ष से (वाग्दान) दक्षिणा लेकर, रूमालादि से बन्धे हुए वर-वधू के हाथ खोल देता है। यह तन्त्र कन्या सम्बन्धी संस्कार से सम्बद्ध है अतः इसकी दक्षिणा भी

कन्या से ही दिलवानी चाहिए थी किन्तु वधू के पास धन नहीं होता इस कारण उसके प्रत्येक दायित्व अर्द्धांगिनी होने के नाते वर पर ही होता है इसी कारण इस सन्दर्भ में भी वर को ही वधू की जिम्मेदारी के कारण आचार्य को दक्षिणा देने का आदेश युक्ति-युक्त एवं न्याय संगत है ॥

वि ते मुञ्चामि रशनां विरश्मीन्वियुक्त्राणि परिचर्त्तनानि ।
दत्त्वा यास्म्भ्यं द्रविणेह भद्रं प्रमां ब्रूताद्धविर्दान्देवताभ्य: ॥

- **तत उत्तरतोऽग्नेर्दर्भेषु प्राचीं प्रकामयति—** तत्पश्चात् आचार्य अग्नि के उत्तर में बिछाई हुई दर्भाओं पर पूर्व की ओर मुख की हुई वधू को सात पग सात मन्त्रों द्वारा यथा विधि चलावे ॥

॥ सप्तपदी ॥

(महत्ता और विधि)

सनातन धर्मानुयायियों के विवाह संस्कार में सप्तपदियों का विशेष महत्व है, इसके बिना विवाह पूर्ण नहीं माना जाता है। कहा है :

नोदकेन न वा वाचा, कन्यायाः पतिरुच्यते।
पाणिग्रहण संस्कारत्, पतित्वं सप्तमे पदे ॥१ ॥
स्वगोत्राद् भृश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे ॥२ ॥
पाणिग्रहणका मन्त्रा, नियतं दार लक्षणम्।
तेषां तिष्ठातु विज्ञेया, विद्वद्‌भिः सप्तमे पदे ॥३ ॥

निष्कर्ष : विवाह संस्कार में पाणिग्रहण के मंत्र, संकल्पादि पत्नी भाव के द्योतक हैं और पूर्ण पत्नी भाव तथा पतिगोत्र प्राप्ति सप्तपदी के अनन्तर ही होती है ॥

पास्कर गृह्यसूत्रानुसारेण—अथैनामुदीचीं दिशमुदङ्‌मुखीं सप्त पदानि प्रकामयत्येकमिषे इत्यादिना— अर्थात् लाजाहोमादि के पश्चात् वधू को अग्नि की उत्तर दिशा में उत्तरोत्तर सात पग 'एकमिषेविष्णुस्त्वान्वेतु' इत्यादि निम्नमंत्रों से चलावे ॥

॥अथ विधि ॥

- अग्नि के उत्तर में बिछाई हुई दर्भाओं को यथा क्रम उत्तरोत्तर (आगे आगे) सात स्थानों पर रखकर तथा दोनों पक्षों द्वारा किन्तु वर पक्ष द्वारा विशेष रूप से कम से कम एक रुपया और अधिकाधिक यथाशक्ति प्रत्येक पग धरने के स्थल पर दक्षिणा डालकर पूर्व की ओर मुख की हुई वधू को निम्न मन्त्रों से सात पग चलावे :

ओ३म् एकम् इषे विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥१ ॥

मन्त्रार्थः (हे वधू !) यह पहला (एकम्) एक पग (इषे) अन्न के लिए धर । (विष्णु) सर्व-व्यापक प्रभु, यज्ञ, सत्य, धर्म, सदाचार तथा ज्ञान (त्वा अनु एतु) तेरे पीछे आवे ॥१ ॥

ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : (द्वे) दूसरा पग (ऊर्जे) बल के लिए धर । शेषपूर्ववत् ॥२ ॥

ॐ त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : (त्रीणि) तीसरा पग तू (रायस्पोषाय) धन पुष्टि एवं वृद्धि के लिए धर । शेष पूर्ववत् ॥

ॐ चत्वारि मयोभवाय विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : (चत्वारि) यह चौथा पग तू (मयोभवाय) सुख वृद्धि के लिए धर । शेष पूर्ववत् ॥४ ॥

ॐ पञ्चं प्रजाभ्यः विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥५ ॥

मन्त्रार्थ : (पञ्चम्) और यह पांचवाँ पग (प्रजाभ्यः) पारिवारिकवृद्धि अर्थात् पुत्रादि के लिए धर । शेष पूर्ववत् ॥५ ॥

ॐ षष्ठं षड्ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वाऽन्वेतु ॥६ ॥

मन्त्रार्थ : (षष्ठम्) यह छठा पग तू (षड्ऋतुभ्यो) छः ऋतुओं के सुखानन्द के लिएधर । शेष पूर्ववत् ॥६ ॥

ओ३म दीर्घायुत्वाय सप्तमं सखा सप्तपदाभव सुमृळीका ।
सरस्वति मा ते व्योम सन्दृशे विष्णुस्तान्वेतु ॥७ ॥

मन्त्रार्थ : (हे कन्ये !)— (सप्तपदा) सात पग धरने वाली तू (सप्तमम्) यह सातवाँ पग (दीर्घायुत्वाय) दीर्घायु (सौ वर्ष से ऊपर) के लिए (सखा) आनन्द एवं पतिव्रत धर्म पालन करने के लिए तथा (सुमृळीका) इह लोक और परलोक में (सरस्वति) यश प्राप्त्यर्थ धर । (सखा सरस्वति) हे सहधर्मिणी भूता, सरस्वती रूपा ! (ते) तेरी सप्तपदी को (व्योम) आकाश स्थित कोई खेचर (मा) मत (सन्दृशे) देखे अर्थात् किसी खेचर की नज़र न लगे । शेष पूर्ववत् ॥७ ॥

- **सप्तपदी के अनन्तर—तच्चक्षुरित्यादित्यमुपस्थापयति दिवा—** यदि दिन का विवाह हो तो वर (वा आचार्य) निम्नमंत्र से वधू द्वारा सूर्य का उपस्थान (खड़े होकर देवार्चना वा नमस्कार) करावे : ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत ।

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्,
प्रब्रुवाम शरदः शतमऽदीनास्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात् ॥

मन्त्रार्थ : स्वाहा, स्वधा प्रभृति सम्पूर्ण देवता और पितर जिसके उदय होने से तृप्त होते हैं, ऐसे विराट् भगवान् के नेत्र जो सूर्यदेव, देवहितार्थ भए और जो आदि में कामादि और अविद्या आदि दोषरहित उदय को प्राप्त हो ऊर्ध्व को जाता है उस भगवान् दिवाकर को हम १०० वर्ष पर्यन्त देखें और जीवित रहें, कानों से यश श्रवण करें, वाणी से यशोगान करें और अदीन अर्थात् धन-धान्य से परिपूर्ण होकर सौ वर्ष अधिक पूर्णायु प्राप्त करें ॥

- **मन्त्र को पढ़कर वर वधू से कहे : सूर्यं पश्यसि ?** (सूर्य को देखती हो ?)
  वधू प्रत्युत्तर दे— पश्यामि (देखती हूँ)
- पुनः वधू पूर्व लिखित मन्त्रोच्चारण करते हुए सूर्य देव को भक्तिभाव से हाथ जोड़ दर्शन करे ।
- **'अस्तमितेऽग्निमुपस्थापयति रात्रौ'—** और सूर्यास्त हो जाने पर अर्थात् रात्रि के विवाह में अग्निदेव का उपस्थान करावे । यथाः

जीवन्तीं पश्यसि ? पश्यामः ॥ ध्रुवं पश्यसि ? पश्यामः ॥
स्वस्त्यात्रैयं पश्यसि ? पश्यामः ॥ अरुन्धतीं पश्यसि ? पश्यामः ॥

'एतेषांमैकैकं पश्यसि इत्याह ऋत्विक् । पश्यामः इति सर्वत्र प्रत्याह वधूः'

भाषा : इन उपरोक्त संज्ञा पदों को आचार्य वधूसे 'पश्यसि' पर्यन्त एक-एक करके पूछे और वधू प्रत्युत्तर में 'पश्यामः' शब्द क्रमिक रूप से कहे । (उत्तर बहुवचन में उपयुक्त है) ॥

- इसके पश्चात् आचार्य वर द्वारा निम्न मन्त्र से वधू के लिए देखे जाने वाले तारागणों को अभिमन्त्रित करे :

सुमङ्गलीरियं वधूरिमा समेत्य पश्यत ।
सौभाग्यस्मै दत्वा यथास्वं विपरेतन ॥

मन्त्रार्थ : हे ध्रुवादि तारागण ! आपके प्रसाद से यह वधू शोभन मङ्गलयुक्ता होवे । आप सभी देवता वधू को मिलकर देखिए और इसे सौभाग्यादि वरदान देकर पुनः आने के लिए जाओ ॥

॥इति शम् ॥

॥अथ सूर्यवर्गम् ॥

● अथ सूर्य वर्गं पठेत्— इसके पश्चात् सूर्यवर्ग पढ़ा जाये । इस ऋग्वेदोक्त सूक्त को पद्धति में 'सूर्यवर्ग' की संज्ञा दी गई है, यही कारण है कि इसे दिन के विवाह में पढ़ने की प्रथा है । अन्यथा उक्त सूक्त का पाठ एवं व्याख्या वर-वधू के लिए अनुकरणीय और आगामी जीवन के लिए अनुसरणीय है । विस्तार भय से मूल पाठ ही दिया जा रहा है ॥

ओ३म् संसृष्टं धनमुभयं समाकृतम् अस्मभ्यं दत्तं वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्ताम् ॥१ ॥
सत्येनोत्तुभिता भूमिः, सूर्योणोत्तुभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति, दिवि सोमो अधिश्रितः ॥२ ॥
सोमेनादित्या बलिनः, सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषाम्, उपस्थे सोम आहितः ॥३ ॥
सोमं मन्यते पपिवान्, यत् संपिशन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्मणो विदु, र्न तस्याशनाति पार्थिवः ॥४ ॥
आच्छद् विधानैर्गुपितो, बार्हतैः सोमो रक्षितः ।
गृब्णामि च्छृण्वँस्तिष्ठसि, न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५ ॥
यत्त्वां देवाः प्रपिबन्ति, तत आप्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता, समानं मास आकृतिः ॥६ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नराशंसीन्योचिनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥७ ॥

चितिरा उपर्वहणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्य दयात्सूर्या पतीम् ॥८॥
स्तोमा आसन्परिधयः कुवीरंच्छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्नि रासीत्पुरोगवः ॥९॥
सोमो वधूयुरऽभवदऽश्विना स्तामुभावरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता दधत् ॥१०॥
मनो अस्या अनु आसीद् द्यौरासीद् उतच्छदिः।
शुक्रावनुडवाहा वास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥११॥ व०२॥
ऋक्सामभ्याम् अभि हितै गावौ ते सोम वावितः।
श्रोत्रं ते चक्रमास्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥१२॥
शुची ते चक्र यत्याव्यानो अक्ष आहतः।
आ नो मानस्मयं सूर्योऽरोहत्प्रयती पतिम् ॥१३॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमऽवासृजत्।
अघास्व हन्यते गावोर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१४॥
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतु सूर्यायाः।
विश्वेदेवा अनुतद्वामऽजानन् पुत्रः पितराव बृणीत पूषा ॥१५॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्याम् उप।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्टाय तस्थथुः ॥१६॥ व० ३॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रे यद्गुहा तद् अद्धा ता य इद्विदुः ॥१७॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेत स इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१८॥
पूर्वाऽपरं चरतौ माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातौ अध्वरम्।

विश्वानि अन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूनन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१९ ॥

नवो नवो भवति जायमानोह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भावन्देवेभ्यो विदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥२० ॥

सुकिं शुक्रं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आरुह्य सूर्ये अमृतस्य लोकं स्येनं पत्ये वहतुं कृण्वष्व ॥२१ ॥ व०४ ॥

उदीर्ष्वाता पतिवती ह्येषा विश्वावसुर्नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यमिच्छ पितृषदं व्यक्तं स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२२ ॥

उदीर्ष्वातो विश्वासो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यमिच्छ प्रफल्यं सञ्जायापत्या सृज ॥२३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्तिनो वरेयम् ।
समर्यमा सम्भगो नो निनीयात्सञ्जास्पतयं स्वयमस्तु देवाः ॥२४ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वा बध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके रिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२५ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करत् ।
यथे यमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥२६ ॥ व०५ ॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तं गृह्याश्विनौ त्वां प्रवहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथेमा वदामि ॥२७ ॥

इह प्रियं प्रजया ते समृद्ध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वा संसृजस्वाथाजिव्री विदथमा वदाथः ॥२८ ॥

नील लोहितं भवति कृत्या सक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बद्ध्यते ॥२९ ॥

परा देहि शामूल्यं ब्रह्मभ्यो विभजा वसु ।
कृत्यैषा पद्धती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥३० ॥

अश्लीरा तनूर्भवति रुषती पापयाऽमुया।
पतिर्यद्वधूवाससा स्वमङ्गमऽभिधित्सते ॥३१ ॥ व ०६ ॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहंतु यक्ष्मायन्ति जनादनु।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३२ ॥
मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमऽतीतामऽपद्र वन्त्वऽरातयः ॥३३ ॥
सुमङ्गलीरियं वधूमिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्मै दत्वा यथाऽस्तं विपरेतन ॥३४ ॥
तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ट वद्विषवन्नैतदर्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्म विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३५ ॥
आशासनं विशासनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३६ ॥ व०७ ॥
गृब्णामि ते सौभगत्वाय हस्तै मया पत्या जरदष्टिर्यथासत्।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हस्पत्याय देवाः ॥३७ ॥
तां पूषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न अरू उशती विश्रया ते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषम् ॥३८ ॥
तुभ्यमग्रे पर्यवहत्सूर्यां वहतु ना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३९ ॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवातु शरदः शतम् ॥४० ॥
सोमः प्रथमो विवेद गन्धर्वो विवेद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजः ॥४१ ॥ व०८ ॥
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वोददद् अग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम ॥४२ ॥

इहैवा तस्मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४३ ॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनमक्त्कर्यमा।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविवेश शन्नोभवद्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येऽधिशिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीर सूर्देवकामा स्योना शन्नोभव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४५ ॥

इमां त्वामिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृण्व।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४६ ॥

सम्राज्ञा श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥४७ ॥

समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥४८ ॥

ध्रुवोऽधिपुष्या मयि मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावती सञ्जीव शरदः शतम् ॥४९ ॥ व० ९ ॥

विहिसेतोरसृक्षत नेन्द्रं देवमऽमंसत।
यत्रा सदद् वृषा कपरिर्यः पुष्टेषु सत्सखा, विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५० ॥

॥इति सूर्यवर्ग वाचनम् ॥

॥कन्यापितु ब्राह्मणपूजनम् ॥

- सूर्य वर्ग पढ़ने के पश्चात् कन्या का पिता ब्राह्मण पूजनार्थ पृच्छा सम्पादन कर निम्न रीति से ब्राह्मण पूजन करे :

ओ३म् गायत्र्यै नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥३ ॥ ॐ तत्सदयतावत् मासोत्तमे महामाङ्गल्य प्रदेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुक तिथौऽमुकवासरे अग्नेर्यविष्ठस्य, अग्नेः पुष्टिपतेः प्रजापतेः अर्यम्णः गन्धर्वस्य त्र्यम्बकस्य कन्योद्वाह निमितं ब्राह्मण पूजनमर्चामहं करिष्ये। आचार्यकहे— ॐ कुरुष्व ॥

- आज्ञा प्राप्त कर यजमान ब्राह्मण को प्रथम तिलक करे । पुनः हाथ धोकर अर्घपुष्प सिर पर धरे, पश्चात् दक्षिणा दे, फिर अर्घपात्र में कुछ फुटकर तथा जल डालकर वह पैसे ब्राह्मण को जल सहित दे, ब्राह्मण जल वापिस यजमान के पात्र में डाले तथा यजमान उस जल से अपना अभिषेक करे ॥

- **'आश्रावितामिति पूर्णां विमुच्य। इत्योद्वाहतन्त्रम्'** अर्थात् 'आश्राविता०' इस निम्न मन्त्र से पूर्णाहुति देकर, अग्नि के चारों ओर प्रथम बिछाई हुई कुशाओं को उठाकर, अग्नि को उन कुशाओं की परिधि से स्वतन्त्र करें—

**आश्रावितमत्याश्रावितं वषट् कृतमऽवषट् कृतम्।
अननूक्तमत्यननूक्तं च यज्ञे रिक्तं यच्च हीनमग्निष्टानि
प्रवेदन्नेतु कल्पयन् स्वाहा ॥**

मन्त्रार्थ : पृष्ठ संख्या १६२ पर देखें।

॥अथ वरस्य प्रायश्चित्त होम :॥

पुनः अग्निं परिसमुह्य। पर्युक्ष्य। परिषिच्य ९। परिस्तीर्य १६। नास्तिनिर्वापणम्॥ रोहिण्यमूलेन वा, यद्वा पुण्योक्त क्रमेणाग्निमानुडुहे रोहिते चर्मण्योपविश्यापि वा दर्भेष्वेव जया प्रभृतिभिर्हुत्वा। अग्निरैतु प्रथम इत्यादयाः पञ्चदशाहुती : स्रुवेण जुहोति॥

भाषा : (अब इस स्थल पर वर की ओर से प्रायश्चित्तहोम प्रारम्भ होता है) पुनः अग्नि का परिसमूहन, पर्युक्षण, परिषिञ्चन कर तथा कुशाओं का परिस्तरण करना। यहाँ निर्वापण (आहुति) नहीं होता॥ रोहिणी या मूल नक्षत्र से युक्त जब चन्द्रमा हो अथवा ज्योतिषशास्त्रोक्त किसी पुण्य दिन में अग्नि के पश्चिम दिग्भाग में लाल चर्म पर अथवा केवल दर्भाओं पर ही वधू को बिठा कर तथा स्वयं (वर) भी बैठ कर पक्षयागानुसार केवल घृत से 'जया' आदि संज्ञक आज्यभागान्त तक होम करे। 'अग्निरैतुं से मन्त्र प्रारम्भकर १५ आहुतियां स्रुव से होम करे॥

॥अथ विधिः॥

[१]ऋतन्त्वा सत्येन अग्निं' परिसमूह्यामि, [२]सत्यन्त्वर्तेन परिसमूह्यामि, [३]ऋतसत्याभ्यां त्वा परिसमूह्यामि॥ [४]ऋतन्तत्वासत्येन पर्युक्ष्यामि, [५]सत्यन्त्वर्तेन पर्युक्ष्यामि, [६]ऋतसत्याभ्यां पर्युक्ष्यामि, [७]ऋतन्त्वासत्येन परिषिञ्चामि, [८]सत्यन्त्वर्तेन परिषिञ्चामि, [९]ऋतसत्याभ्यां परिषिञ्चामि॥

- उपरोक्त मन्त्रों से अग्नि पर नव बार जल छिड़कने के बाद— **आदौ पञ्च पुनस्त्रीणि त्रीणि-पञ्च तथैवच। [५]पूर्वतः, [३]दक्षिणतः, [४]पश्चिमतः, [५]उत्तरतः॥**

- कुशाओं को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में ५ ।३ ।३ ।५ के कर्म से अग्नि के चारों ओर बिछाये॥ फिर पक्षयागानुसार अगली क्रिया का सम्पादन करे— यथाः

अग्नये वायते सूर्याय चन्द्रमसे विष्णवे प्रायश्चित्तयागदेवताभ्यः अग्नये वैश्वानराय इदमाज्यमर्पयामि नमः॥

ॐ प्रजापतये स्वाहा (इतिमनसः) ॥ ॐ इन्द्रायस्वाहा ॥ (इत्याघारौ) ॥१ ॥
ॐ अग्नये स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा ॥ इत्याज्यभागः ॥२ ॥
ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा ॥ इतिमहाव्याहृति ॥३ ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥३ ॥४ ॥

॥आयुषा प्राणं इति चतस्रः ॥

आयुषा प्राणं सन्तनु स्वाहा। प्राणाद् व्यानं सन्तनु स्वाहा।
व्यानादपानं०। अपनाच्चक्षुः ०। चक्षुषः श्रोत्रं ०। श्रोत्राद् वाचं०।
वाचाऽऽत्मानं ०। आत्मनः पृथिवीं ०। पृथिव्याऽन्तरिक्षं ०। अन्तरिक्षाद् दिवं ०।
दिवः स्वः सन्तनु स्वाहा ॥

॥द्वादशगृहीतेनाज्येन जया होमः ॥

ओ३म् आकूतं चाकूतिश्च, आधीतं चाधीतिश्च, विज्ञातं च विज्ञातिश्च,
चित्तं च। चितिश्च, नाम च क्रतुश्च, दर्शशच पौर्णमासश्च,
प्रजापतिर्जया निद्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनज्येषु तेभिर्वाजं
वा जयन्तो जयेन ते तेमा विश्वाः पृतना अभिष्याम स्वाहा ॥

॥चतुर्गृहीतेनाभ्यातानां देवानां होमः ॥

बृहस्पतिः पुरोहिताः देवाः देवानां देवदेवाः प्रथमजा देवा देवेषु पराक्रमध्वम् ॥१ ॥
प्रथमा द्वितीयेषु द्वितीयास्तृतीयेषु त्रिरेकादशत्रियांस्त्रिशा अनु व आरभ ॥२ ॥
इदं शकेयं यदिदं करोमि ॥३ ॥ ते मा वत जन्विताऽस्मिन्ब्राह्मण्यऽस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाऽऽशिष्यस्या पुरोध्याऽस्य देवहूत्याम स्वाहा ॥४ ॥

।।राष्ट्रभृतानां देवानां होमः ।।

ऋताषाड्ऋतु धामाग्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मैस्वाहा वट् ॥१ ॥
तस्यौषधियोऽप्सरसो मुदानाम् ताभ्यः स्वाहा वट् ॥२ ॥
सुषुम्णः सूर्यरश्मि चन्द्रमा गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥३ ॥
तस्य नक्षत्राण्यऽपसरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥४ ॥
संहितो विश्वसामा सूर्ययोर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा । वट् ॥५ ॥
तस्य मरीचयोऽप्सरस् आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥६ ॥
भुज्युः सुपर्णो यज्ञोगन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥७ ॥
तस्य दक्षिणाऽप्सरस्वतवा नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥८ ॥
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातुतस्मै स्वाहा वट् ॥९ ॥
तस्य ऋक्सामान्यऽपसरस एषयो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥१० ॥
इषिरो विश्व व्यचा वातो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ॥११ ॥
तस्याऽऽपोऽप्सरस ऊर्जो नाम ताभ्यः स्वाहा वट् ॥१२ ॥
स नो भुवनस्यपते यस्य त उपरिग्रहा विराट् पते अस्मै ब्रह्मणेऽस्मैक्षत्राय महिशर्म—
यच्छ स्वाहा ॥१३ ॥ (मन्त्रार्थ गत तन्त्र में देखें)

।।अग्निर्भूतानामित्येकविंशत्याधिपत्यानि जुहोति ।।

अग्निर्भूता नामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥१ ॥
यमः पृथिव्याधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२ ॥
वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥३ ॥
सूर्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥४ ॥
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥५ ॥
विष्णोर्दिशामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥६ ॥

पूषा पृथिवी नामधिपतिः ० ॥७ ॥ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः ० ॥८ ॥
सविता प्रसवानामधिपतिः ० ॥९ ॥ इन्द्रो ज्येष्ठा नामधिपतिः ० ॥१० ॥
मित्रः सत्यानामधिपितः ० ॥११ ॥ वरुणो धर्मानामधिपितः ० ॥१२ ॥
रुद्रा पशूनामधिपतिः ० ॥१३ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मणामधिपितः ० ॥१४ ॥
ब्राह्मणो वाचामधिपितः ० ॥१५ ॥ सोमो औषधीनामधिपतिः ० ॥१६ ॥
समुद्रः स्रवन्तीनामधिपतिः ० ॥१७ ॥ अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः ० ॥१८ ॥
गायत्रीच्छन्दसामधिपत्नी सा माऽवतुतस्यै स्वाहा ॥१९ ॥
मरुतः गणानामधिपतिः स माऽवतु तस्मै स्वाहा ॥२० ॥
पितरः पितामहाः परवरेभ्यस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२१ ॥

(उपर्युक्त मन्त्रों का अर्थ पूर्व तन्त्र में दिया जा चुका है। अतः वहां से ग्रहण करें)

॥अथाग्निरैतु इति चतस्रः ॥

विनियोगः

ॐ अग्निरैत्वादि चतस्रमंत्राणां प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः मन्त्रोक्त देवता
घृत होमे विनियोगः ॥ उक्त मन्त्र बोलकर जल गिरायें
अग्निरैतु प्रथमो देवतानाँ सोस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युः पाशात्।
तदयाँ राजा वरुणो नु मन्यताँ यथेयँ स्त्रीपोत्र मघन्नरोदात् स्वाहा ॥१ ॥

मन्त्रार्थ : सब देवताओं से प्रथम अग्निदेव आवे, वह इस की सन्तती को मृत्यु पाश से छुड़ावे अथवा मृत्यु पाश को भस्मकर इस का प्रजा पुत्रादि वरुण राजा की आज्ञा से जैसे यह स्त्री सम्बन्धी दुःख से न रोये ऐसी प्रजा पुत्रादि सन्तान को देवे ॥१ ॥

अग्निरिमां त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः।
अशून्योपस्था जीवितामऽस्तु माता पौत्रमानन्दमभि प्रबुध्यतामियाँ स्वाहा ॥२ ॥

मन्त्रार्थ : अग्निहोत्र सम्बन्धी अग्नि इस कन्या के पुत्रादि को दीर्घायु प्राप्त कराये। इसकी गोद पुत्रों से कभी खाली न रहे तथा यह स्त्री पुत्र पौत्रादि सम्बन्धी आनन्द को भोगे ॥२ ॥

मा ते गृहे निशि घोर उत्थादऽन्यत्र त्वद् रुदत्यः संविशन्तु।
जीव पुत्रा पतिलोके विराज पशयन्ती प्रजां सुमनस्यमाना स्वाहा ॥३ ॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! तेरे घर में रात को कभी भयानक शोर न उठे। रोने वाले लोग तुझसे दूर देश में निवास करें। तू सुखी सन्तती को देखती हुई पतिगृह में विशेष शुभ युक्त होवे ॥३ ॥

मा ते कुमारः स्तन्धः प्रमायि मा त्वां विकेश उर आवधिष्ठः।
स्तनधयं ते सविता भिरक्षत्वऽवाससः परिधानाद बृहस्पतिः।
विश्वे देवाः अभिरक्षन्तु नित्यं स्वाहा ॥४ ॥

मन्त्रार्थ : हे वधू ! तेरा कोई दूध पीता बालक मृत्यु को प्राप्त न हो और तू किसी भी समय स्वामी के वियोग के कारण विकेशी तथा हृदय को पीटने वाली न होवे। तेरे दुधमुंहे बच्चे की सविता देव रक्षा करे, देव गुरु बृहस्पति सामान्य वस्त्र से लेकर परिधान वस्त्र तक रक्षा करे तथा समस्त देवगण तेरी सदैव रक्षा करें, उनके लिए हवि सुहूत होवे ॥४ ॥

॥अग्नेप्रायश्चिते ० इत्यादि पञ्चदेवानां क्रमोत्क्रमार्षम् ॥

अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि।
यास्यां भृशा तनूस्तामस्यां नाशय स्वाहा ॥१ ॥

वायोः प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि।
याऽस्यां भृशा तनूस्तामऽस्यां नाशय स्वाहा ॥२ ॥

सूर्यः प्रायश्चित्ते० ॥३ ॥ चन्द्रः प्रायश्चित्ते ० ॥४ ॥ विष्णोः प्रायश्चित्ते ० ॥५ ॥
विष्णोः प्रायश्चित्ते) ॥६ ॥ चन्द्रः प्रायश्चित्ते ० ॥७ ॥ सूर्यः प्रायश्चित्ते ० ॥८ ॥
वायोः प्रायश्चित्ते ० ॥९ ॥

अग्नेः प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ।
यास्यां भृशा तनूस्तामस्यां नाशय स्वाहा ॥१० ॥

मन्त्रार्थ : (अग्ने प्रायश्चिते) हे पाप नाशक अग्निदेव ! (त्वं) तू (देवानाम्) सब देवताओं की (प्रायश्चितिः) पाप निवारक शक्ति का निमित्त (असि) है । अतः (अस्याम्) इस वधू में (या) जो किसी कारण से (अस्यां तनूः) इसका शरीर यदि सन्तान विरोधी, पशु, गृह, यश तथा पति विरोधी दुर्गुणों से युक्त है तो इसके शरीरगत उक्त अवगुणों को, यथा क्रम अग्निदेव, वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा विष्णुदेव, अपने अनुग्रह से नाशकर सद्गुण धारण करायें ॥

- पुनः बैठकर स्रुवस्थ शेष घृत में भस्म का मिश्रण कर निम्न मन्त्र (यजु० अ० ३ मं० ६२) से आचार्य वर-वधू के निम्नोक्त अङ्गों पर अनामिका अङ्गुली से भस्म लगावे :

त्र्यायुषं जमदग्ने इतिललाटे । कश्यपस्य त्र्यायुषं इति ग्रीवायाम् ।
यद् देवेषु त्र्यायुषं इति दक्षिण बाहुमूले । तन्नोऽस्तु त्र्यायुषं इति हृदये ।
तत्तेऽस्तु त्र्यायुषं इति हृदये ॥

मन्त्रार्थ : जमदग्नि की जो बाल्य, यौवन और वार्धक्य— ऐसी तीन प्रकार की आयु हुई है और कश्यप की जो तीन प्रकार की आयु तथा देवगणों की तीन प्रकार की आयु हुई है वह त्रिगुणात्मक आयु वर-वधू को पृथक-पृथक प्राप्त होवे ॥ 'तन्नो' से वर को और 'तत्ते' से वधू को भस्म लगावे ॥

- पुनः अलग एक पात्र में आज्यशेष के उद्धृत घृत में दही मिलाकर निम्न मन्त्र बोलकर तीन बार घृतमिश्रित दही वधू को वर खिलावे :

दधिक्रावणो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्रण आयूँपिता रिषत् ॥

मन्त्रार्थ : सर्व विजयी, अशन के व्यापक अन्नपति, जठरस्थ अग्नि की मैं उपासना करता हूँ। यह अग्नि हमारे दही भक्षण करने वाले मुखों को सुगन्धित करे तथा हमारे जीवन की वृद्धि करे ॥

- **॥मानवकायोत्सङ्गे। इळामग्ने इति (अक्षोट १०) फलानि प्रददाति ॥**

- वर इसके पश्चात् शुद्ध मन से यथेष्ट पुत्र कामनार्थ निम्न मन्त्र से १० अखरोट वधू की गोद में डालता है। लोक रीति में पुनः वधू उन अखरोटों को वर पक्षीय यजमान की गोद में डालकर तथा सादर प्रणाम करती है और यजमान वधू को आशीर्वाद देते हुए धन देकर सत्कृत करता है ।

इळामग्ने पुरुंदसं सन्निङ्गोः शश्वत्तमां हवमा नाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मै स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : हे अग्ने ! तू अनेक कर्मों के आश्रय, गवादि के वृद्धिकारक अन्न को यजमान के लिए सिद्ध कर। हमको पुत्र होवे, वह पुत्र बहुत सन्तती वालाहोवे। हे अग्निदेव ! तेरी वह सुमति होवे जिससे तू हमारे लिए अन्नादि सुखकारी साधनों को सिद्ध करे ॥

- **'ऋतु तिथ्यादि तन्त्रे समाप्ति'**— इसके पश्चात् पूर्वोक्त विधि से ऋतु-तिथ्यादि होम के बाद यह तन्त्र समाप्त होता है। उक्त तन्त्र वधू प्रवेश के बाद करना युक्ति संगत है ॥

॥वरस्य ब्राह्मण पूजनम् ॥

ओ३म् गायत्र्यै नमः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥ ओ३म् अद्य तावत् मासोत्तमेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकवासरे अग्नेर्यविष्ठस्य अग्नेः वायोः सूर्यस्य चन्द्रस्य विष्णोः प्रायश्चित्त देवतानां आत्मोद्वाह निमित्तं ब्राह्मण पूजनमर्चामहं करिष्ये। आचार्य कहे— ॐ कुरुष्व ॥

- पृच्छा का कार्य समाप्त होने पर वर-तिलक, अर्घपुष्प तथा दक्षिणादि से ब्राह्मण पूजन करे। पुनः निम्न मन्त्र से पूर्णाहुति देकर तन्त्र समाप्ति :

आश्रावितमत्याश्रावितं वषट् कृतमवषट् कृतं। अननूक्तमत्यननूक्तं च यज्ञेऽतिरिक्तं यच्चहीनमग्निष्टानि प्रवदन्नेतु कल्पयन् स्वाहा ॥

मन्त्रार्थ : गत तन्त्र पृष्ठ संख्या १६२ पर देखें ॥

- इस स्थल पर कन्या का नाम बदला जाता है । यदि कन्या और वर के नाम परस्पर मिलान में शुभ न हों तो आवश्यकता में कन्या का नाम बदला जाता है, वर का नहीं । कन्या का नाम रखने के लिए मैलापक सारणी में वर के नक्षत्र के नीचे जहां दोषाङ्क का अभाव हो या दोष थोड़ा समझकर ऋण (—) का चिह्न लिखा हो उसी खाने में ऊपर गुण संख्या भी १८ से अधिक मिले उसी के बाँई ओर जो नक्षत्र मिला हो उसी अक्षर के अनुसार निर्दोष नाम रखना चाहिए । बहुत से विद्वान् कन्या सङ्कल्प के समय 'वरस्य पंचमेकन्या, कन्यायाः नवमे वरः बोलते हुए नाम बदल लेते हैं । ऐसे नाम बदलना व्यर्थ है अतः पहिले सारणी से गुणदोष देखें । (पञ्चाङ्गतः)
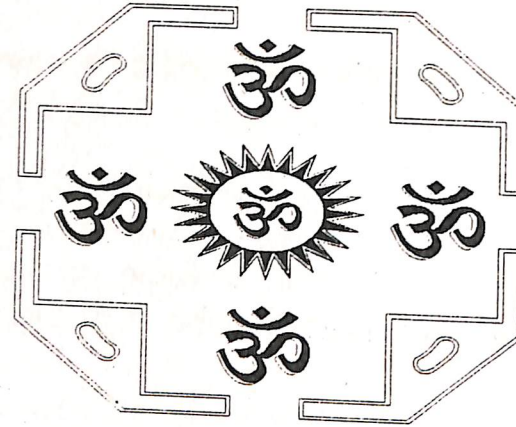
दायभक्तमानीय (भाषाया द्वदभत्तऽ)

- पुनरग्निं परिसमूह्य पर्युक्ष्य परिषिच्य ९ चतुष्कोष्टैः परिस्तीर्यः

- (इस प्रसंग में वर-वधू दोनों को एक पात्र में दूध भात भक्षण कराया जाता है प्रायः ७/७ ग्रास वर-वधू भक्षण करते हैं) पुनः अग्नि का निम्नमन्त्रों से परिसमूहन पर्युक्षण और परिषिञ्चन से ९ बार जल से सिंचन कर तथा कुशाओं को ५/३/३/५ के क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिमोत्तर में बिछा-वन करें। यथा—

ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्निं' परिसमूह्यामि, सत्यन्त्वर्तेन परिसमूह्यामि, ऋतसत्याभ्यां परिसमूह्यामि। ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्निं' पर्युक्ष्यामि, सत्यन्त्वर्तेन पर्युक्ष्यामि, ऋतसत्याभ्यां पर्युक्ष्यामि। ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्नि' परिषिञ्चामि, सत्यन्त्वर्तेन परिषिञ्चामि, ऋतसत्याभ्यां परिषिञ्चमि॥ आदौ पञ्च पुनस्त्रीणि त्रीणि पञ्च तथैव व पूर्वतः दक्षिणतः पश्चिमतः उत्तरतः॥

अन्न पात्रे इदं हविः ०

इदं हविः प्रजननं में अस्तु दशवीरं सर्व गणं स्वस्तये।
आत्मसनि, प्रजासनि, पशुसनि, लोकसन्यभिसनि
अग्निं प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयोरेतो अस्मासु धत्त॥ (पृष्ठ २६८)

- हस्तेनाहुतिद्वयंहुत्वा—यथा—

अग्नये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा॥

● अग्नि विमुच्यः यथा—

ऋतन्त्वा सत्येन 'अग्नि' विमुञ्चामि, सत्यन्त्वर्तेन विमुञ्चामि, ऋतसत्याभ्यां विमुञ्चामि ॥ नयामि ॥

धर्मं देहि०— निम्नमन्त्र से हाथ जोड़ प्रार्थना :

धर्मं देहि धनं देहि पुत्रपौत्रांश्च च देहि मे।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं, देहि में हव्यवाहन् ॥१ ॥
भक्तिं देहि श्रियं देहि, सुखं देहि स्वतन्त्रताम्।
देहि भोगं च मोक्षं च, मनोभिलषितं मम ॥२ ॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ, ब्रह्म विष्णु महेश्वर।
यत्र देवालयाः सर्वे, तत्र गच्छ हुताशन ॥३ ॥
तेजोसि तेजो मयि देहीत्यात्मानं देहि ॥४ ॥

● **अन्नपात्रात्क्षेत्रेश बलिं दत्वा—शेषं व धूवरौ प्राश्नीतः ॥**

भाषा : अन्न पात्र से क्षेत्र पालों को बलि प्रदान कर अवशिष्ट अन्न को वर-वधू दोनों ही एक पात्र में अन्न भक्षण करें । इस स्थल पर 'समाशन' करने में शास्त्रकारों ने कोई दोष नहीं माना है । इस कर्म को वर-वधू के पारस्परिक प्रेम वृद्धि का हेतु दर्शाया है । वर निम्नमन्त्रों का उच्चारण कर समशन क्रिया सम्पन्न करें । यथा :(क) **क्षेत्रेशबलिम्— योऽस्मिन् निवसति क्षेत्रे, क्षेत्रपालः सकिंकरः । तस्मै निवेदयाम्यद्य, बलिं पानीय संयुतम् ॥ क्षां क्षेत्राधिपतयेऽन्नं नमः रां राष्ट्राधिपतयेऽन्नं नमः सर्वाभय वर प्रदो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥** (ख) वर-वधू थाली का स्पर्शकरते हुए मन्त्रोच्चारण करें :

अन्नमेव विवननमन्नं, संवननं स्मृतम्।
अन्नं पशूनां प्राणं सदऽन्नं, ज्येष्ठं भिषक्स्मृतम् ॥१ ॥
अन्नमयेन मणिना, प्राणसूत्रेण पृश्निना।
सिनोसि सत्यग्रन्थिना, हृदयं च मनश्च ते ॥२ ॥

सह वाचा मनो अस्तु, सहचित्तं सहव्रतम्।
चक्रमिवानुड्हः पदं, मामेवान्वेतु ते मनः ॥३ ॥

मां चैव पश्य सूर्यं च, मा चान्येषु मनः कृथाः ।
चाक्रवाकं संवननं, मम चामुष्याश्च भूयाद् ॥४ ॥

(वरेणवध्वा षष्ठ्यन्तं नाम ग्राह्यम्)

मन्त्रार्थ : अन्न ही विभाजन और समशन की वस्तु समझा जाता है । अन्न प्राणियों का प्राण है । अन्न ही तो प्रशस्त भेषज (औषध) कहलाता है अर्थात् अन्न ही क्षुधा जनित व्याधियों को हर लेता है ॥१ ॥ (वर, वधू से कहता है)— हे वधू तेरे हृदय और मन को मैं अन्नमय मणि तथा सूक्ष्म प्राण सूत्र से, सत्य की ग्रन्थि (गाँठ) द्वारा बान्धता हूँ ॥२ ॥ हे वधू ! हम दोनों का मन और वचन समान हो अर्थात् जैसा निर्व्याज वचन ही वैसा ही छल रहित यानि निष्कपटमन हो । हमारा चित्त सहभाव युक्त और हमारा व्रत भी समान हो, यथा छकड़े का चक्र अपने खींचने वाले बैल के पग अनुसरण करता है उसी प्रकार तेरा मन मेरा अनुसरण करे ॥३ ॥ हे वधू मुझको और सूर्य को देख, पर-पुरुष में मन मत लगा । जिस प्रकार चक्रवाक् पक्षियों का जोड़ा उपलब्ध (प्राप्त) वस्तु को अनुरागवश समविभाजन कर के खाता है उसी प्रकार हम दोनों की पारस्परिक प्रीति होवे और उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होवे ॥४ ॥ (चतुर्थ श्लोक में 'अमुष्य' के स्थान पर वर, वधू का नाम षष्ठी विभक्ति में ले ।
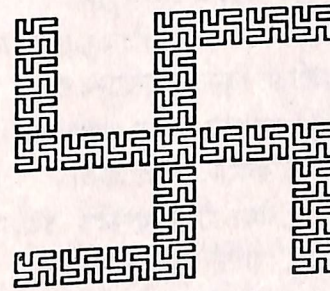
॥ मंगल पुष्प प्रक्षेपणम् ॥

यजमान और यजमान पत्नी क्रमशः वर-वधू के समीप खड़े होकर निम्न मङ्गलमय २७ छन्दोबद्ध मन्त्रों का पाठ करते हुए वर-वधू पर पुष्पों की अनवरत वर्षा करें। ६४ में से २७ सार युक्त श्लोकों का चयन उच्चारण सुविधा तथा समय के न्यूनतम व्यय को दृष्टि में रखकर किया गया है साथ ही पद विभाजन करके वाचक के लिए उच्चारण सुविधा का प्रयास किया गया है। इतिशम् ॥

ज्योत्कारं क्रमते चैव, स्वस्तिना परिपठ्यते।
ब्राह्मणै राशिषाः कार्या, विष्णुर्वचन मब्रवीत् ॥१॥
विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा, ब्रह्मा सुरेन्द्रोथवा,
भानुर्वा शशि लक्ष्मणोथ भगवान्, बुधोथ सिद्धोथवा।
राग द्वेष विषार्ति मोह रहितः, सन्तान कल्पद्रुमो,
यः सर्वैः सह संस्कृतो गुण गणैः, तस्मै नमः सर्वदा ॥२॥
प्रसन्न मूर्तिः स्थिर मन्त्र विग्रहः, समग्रशक्ति जगदेक बान्धवः।
उमा पतिः खण्ड शशाङ्कशेखरो, जयत्यनाथार्तिहरो महेश्वरः ॥३॥
सुवर्चला यथार्कस्य, यथा चन्द्रस्य रोहिणी।
मदनस्य रतिर्यद्वत, तथा त्वं भव भर्तरि ॥४॥
रामस्य च यथा सीता, विनता कश्यपस्य च।
पावकस्य यथा स्वाहा, तथा त्वं भव भर्तरि ॥५॥
यथा गौरी महेशस्य यथा स्वर्ग पतेः शची।
यथा श्रीः श्रीधरस्यैव, तथा त्वं भव भर्तरि ॥६॥
यथेन्द्राणी हरिहये, स्वाहा चैव विभावसौ,
रोहिणी च यथा चन्द्रे, दमयन्ती यथा नले।

यथा वैश्रवणे भद्रा, वसिष्ठे वा प्यरुन्धती,
यथा नारायणे लक्ष्मीः, तथा त्वं भव भर्तरि ॥७॥

पृथिव्यां यानि रत्नानि, गुणवन्ति गुणानि च।
तान्याप्नुहित्वं कल्याणि, सुखिनी शरदः शतम् ॥८॥

धन पुत्रवती साध्वी, सततं भर्तृ वल्लभा।
मनोज्ञा ज्ञान सहिता, तिष्ठ त्वं शरदः शतम् ॥९॥

यद्वन् नृपे दशरथे च कुसल्य कन्या,
मन्दोदरी दशमुखेऽसुर संघ मुख्ये।
अत्रौ यथा सकल धर्म रताऽनुसूया,
तद्वद् भव त्वमपि भर्तरि नित्यरक्ता ॥१०॥

यन्मङ्गलं शैल सुता विवाहे, हरस्य दत्तं कमलासनेन।
तन्मङ्गलं तेऽद्य विवाह काले, ददामि वै देव मुनि प्रणीतम् ॥११॥
सूर्य सोम कुज चन्द्र-नन्दना, जीव शुक्रशनि राहु केतवः।
ध्रुव कुम्भजयुता महाग्रहाः, मङ्गलंदधतु वोऽभिषेकजम् ॥१२॥

सूर्येन्दु राशि तिथियोग मुनीन्द्र तारा,
लोकेश भूत वसुनाग नगाः समुद्राः।
विद्याधरा प्सरस आदि गणाः सदैव,
कुर्वन्तु वां सुमुदिताः प्रथमाभिषेकम् ॥१३॥

आदित्योग्नियुतो विधुः सवरुणो, भौमः कुमारान्वितः
सौम्यो विष्णुयुतो गुरु समघवा, वाणी युतो भार्गवः।
सब्रह्मा रविजो गणेश्वर युतो, राहुः सरुद्रः शिखी
माङ्गल्यं ददतो हरार्चन रताः, कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥१४॥

यावद् द्वीपे तरङ्गान् वहति सुर नदी, जाह्नवी पुण्य तोया
यावदाकाशमार्गे तपति दिनकरो, भास्करो लोकपालः।

यावद् ब्रह्माचविष्णुः सुरपति सहितो, वर्तते मेरु शृङ्गे
तावत् त्वं भूमि निष्ठो धनसुत सहितो, भुङ्क्ष्व पथ्यां सुलक्ष्मीम् ॥१५॥
यावच्चन्द्रार्क तारा भ्रमयति गगने, काल मूर्तिश्च विष्णु-
यावत्कैलास मेरु हिमगिरि गिरिजा, यान्ति नद्यः समुद्रम्।
यावत्कल्पान्तकालं दनुज सुरगणा, भूर्भुव स्वश्च यावत्-
तावत्त्वं भूमि निष्ठो धन सुत सहितो, भुङ्क्ष्व पथ्यां सुलक्ष्मीम् ॥१६॥
लक्ष्मीः कौस्तुभ पारिजातक तरु, धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
धेनुः कामदुधा सुरासुर गजो, रम्भा च देवाङ्गना।
अश्वः सप्तमुखस्तथा हरि धनुः, शंख, विषं चाऽमृतम्
रत्ना नीति चतुर्दश प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वां मंगलम् ॥१७॥
यावत् तोयधरा धराधर धरा, धाराधरा भूधरा
यावच्चारु विचारु चारुचमरं, चामीकरं चामरम्।
यावद् राम विराम राम रमणं, रामायणं श्रेयसे
तावद् भोग विभोग भोग भवनं, भोगायनं त्वं भव ॥१८॥
आयुर्वर्षशतं शतं तप शतं, वराङ्गनानां शतं
कम्बोजाऽश्व शतं शतं शत गुणौ, मतङ्गजानां शतम्।
छत्रं पूर्ण घटाभिषेक सहितं, दासीजनानां शतं
जीवत्वं सकलत्र पुत्र सहितो, मन्वन्तराणां शतम् ॥१९॥
आयुष्मान् भव पुत्रवान् भव भव, श्रीमान् यशस्वी भव
प्रज्ञावान्भव भूरि भूति करणौ, दानैः कनिष्ठोभव।
तेजस्वीभव वैरि-दर्प-दलन, व्यापार दक्षो भव
श्री शम्भोर्भव पद-पूजन रतः, सर्वोपकारी भव ॥२०॥
आयुद्रोणसुते श्रियोदशरथे, शत्रुक्षयं राघवे

ऐश्वर्यं नहुषे गतिश्च पवने, मानं च दुर्योधने।
शौर्यं शान्त नवे बलं हल धरे, सत्यं कुन्ती सुते
विज्ञानं विदुरे भवन्तु भवतः, कीर्तिश्च नारायणे ॥२१ ॥

आयुर्बलं विपुलमऽस्तु सुखितमऽस्तु
सौभाग्यमऽस्तु निषदा तव कीर्तिरस्तु।
श्रीरस्तु धर्ममतिरस्तु रिपुक्षयोस्तु
सन्तानवृद्धि रभिवाञ्छित सिद्धिरस्तु ॥२२ ॥

दीर्घायुर्भव जीववत्सर शतं, नश्यन्तु सर्वापदः
स्वास्थ्यं सम्भज चंचलां त्यज मति, लक्ष्म्येकनाथो भव।
किं ब्रूमो भृगु-गौतमात्रि-कपिलो, व्यासादिभिर्भाषितं
यद्रामस्य पुराभिषेक समये, तच्चाऽस्तुते मंगलम् ॥२३ ॥

सुपुण्याहं सुनक्षत्रं, सुलग्नं च सुमङ्गलम्।
अस्मिन् विवाहकालेतु, देयाद् गणपतिस्तु वाम् ॥२४ ॥

आयुश्च विद्यां च धनं सुखं ते,
धर्मार्थ कामं बहुपुत्र लाभम्।
शत्रु क्षयं राजसुपूज्यतां च,
तुष्टा ग्रहाः सर्व कामान् दिश्यन्तु ॥२५ ॥

सुरार्चनेन दानेन, साधूनां सङ्गमेन च।
आशीर्वादेन विप्राणां, जीव त्वं शरदः शतम् ॥२६ ॥

मार्कण्डेय मुनः स्वर्ग, वैद्ययोः स्वर्पतेः समम्।
आयु रारोग्य मैश्वर्य, मेतत् त्रितय मस्तु ते ॥
जीव त्वं शरदः शतम् ॥२७ ॥

॥इति मंङ्गल पुष्प प्रक्षेपणम् ॥

शान्तिः !

शान्तिः ! !

शान्तिः ! ! !

॥सुशान्तिर्भवतु ॥

॥अथाग्निं कृत्यम् ॥

- मंगल पुष्प प्रेक्षपण पश्चात् विवाह की अन्तिम कड़ी पर हाथ में कुशस्तर और यव तिलादि के दाने लेकर निम्नविधि से किये गये कार्य में न्यूनाधिकता की सम्पूर्णतार्थ, आचार्य उक्त कृत्य सम्पन्न कराये । यथा—

ओ३म् गायत्र्यै नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी महि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३ बार ॥

ओ३म् तत्सदद्य तावत् मासोत्तमे महामाङ्गल्यप्रदेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुक तिथौऽमुकवासरान्वितायां महागणपतेः, कुमारस्य, श्रियः, सरस्वत्याः, लक्ष्म्याः, विश्वकर्मणः द्वारदेवतानाम् । अग्नेः पुष्टिपतेः, प्रजापतेः, अर्यम्णः, गन्धर्वस्य, त्र्यम्बकस्य विवाहोद्वाह देवतानाम् । अग्नेः, वायोः, सूर्यस्य, चन्द्रमसः, विष्णोः प्रायश्चित्तयागदेवतानाम् । मेषादीनां द्वादश राशि नाम् । अश्विन्यादिनां सप्तविंशति नक्षत्राणाम् । वासुदेवस्य, (सङ्कर्षणस्य, प्रद्युम्नस्य, अनिरुद्धस्य, सत्यस्य, पुरुषस्य, अच्युतस्य, माधवस्य गोविन्दस्य) सहस्रनाम्नः विष्णोः, लक्ष्मीसहितस्य नारायणस्य । भवस्यदेवस्य (शर्वस्यदेवस्य, रुद्रस्यदेवस्य, पशुपतेर्देवस्य, उग्रस्यदेवस्य, ईशानस्यदेवस्य) पार्वती सहितस्य परमेश्वरस्य । विनायकस्य (कृष्ण पिङ्गलस्य, गजाननस्य, लम्बोदरस्य, भाल चन्द्रस्य, हेरम्बस्य, आखुरथस्य, विघ्नेशस्य, विघ्नभक्ष्यस्य) वल्लभा सहितस्य महागणेशस्य । ह्रां ह्रीं सः सूयस्य (सप्ताश्वस्य, अनश्वस्य, एकाश्वस्य, नीलाश्वस्य, प्रत्यक्षदेवस्य, परमार्थ सारस्य, तेजो रूपस्य) प्रभा सहितस्य आदित्यस्य । भगवत्याः अमायाः कामायाः, चार्वङ्ग्याः, टङ्कधारिण्याः, तारायाः, पार्वत्याः, यक्षिण्याः, श्रीशारिका भगवत्याः, श्रीशारदा भगवत्याः, श्री महाराज्ञी भगवत्याः, श्री ज्वालाभगवत्याः, ब्रीडा भगवत्याः, वैखरी भगवत्याः, वितस्ता भगवत्याः, गङ्गा भगवत्याः, यमुना भगवत्याः, कालिका भगवत्याः, सिद्धलक्ष्म्याः, महालक्ष्म्याः, महात्रिपुर सुन्दर्याः, सहस्रनाम्न्याः देव्याः । विष्णु पञ्चायतन देवतानाम् । इन्द्रादिनां दशदिक्पालानाम् । अनन्तादीनाम् अष्टानां कुलनाग देवतानाम् । अग्न्यादित्योः, वरुण-चन्द्रमसोः, कुमारभौमयोः, विष्णु बुधयोः, इन्द्र बृहस्पत्योः, सरस्वती शुक्रयोः, प्रजापति शनैश्चरयोः, गणपति राहोः, रुद्रकेत्वोः, ब्रह्म ध्रुवयोः, अनन्तागस्त्योः । ब्रह्मणः, कूर्मस्य, ध्रुवस्य, अनन्तस्य, हरेः, लक्ष्म्याः, कलमायाः । शिख्यादिनां पञ्चचत्वारिंशद् वास्तोष्पतिदेवतानाम् । ॐ भूर्देवतानां, ॐ भुवोर्देवतानां, ॐ स्वर्देवतानां, ॐ भूर्भुवः स्वर्देतानाम् । अखण्ड ब्रह्माण्ड देवतानाम्, धुरां, उपधुरां, महागायत्र्याः, महासावित्र्याः, महासरस्वत्याः, हेरुकादिनां, वटुकादिनाम्

आत्मनो वाङ्मनाकायोपार्जित पाप निवार्णार्थं **(वर कहे)** आत्मोद्वाह निमित्तं **(यजमान कहे)** कन्योद्वाह निमितम् **(दोनों कहें)** — कलश पूजनं, ग्रह मण्डल पूजनं, दिक्पाल पूजनमऽच्छिद्रं सम्पूणमऽस्तु। **आचार्य कहे—** एवमऽस्तु ॥

- **हाथ में रखे हुए दर्भकाण्ड यवतिलादि इधर-उधर फैंकें ॥**

- **उपर्युक्त कृत्य के पश्चात् वर-यजमान हाथ जोड़कर निम्नवाक्य उच्चारण करते हुए अपनी अल्पज्ञता तथा विश्वम्भर भगवान् की सर्वज्ञता का भाव रखकर अन्त में साष्टाङ्ग (दण्डवत्) प्रणाम करें—**

॥कृताञ्जली नमस्कारम् ॥

आपन्नोस्मि शरण्योऽसि, सर्वाऽवस्थासु सर्वदा।
भगवाँस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि, रक्ष मां शरणागतम् ॥१ ॥

आवाहनं न जानामि, न जानामि विसर्जनम्।
पूजाभावं न जानमि, क्षम्यतां परमेश्वर !
क्षम्यताम् परमेश्वरि ! ॥२ ॥

॥साष्टाङ्ग प्रणामम् ॥

पद्भ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां, शिरसा, उरुसा,
मनसा, वचसा, कर्मणा च साष्टाङ्ग
नमस्कारं
करोमि नमः ॥

* * *

॥अथोदकलशम्॥

- इसके पश्चात् यजमान् आचार्य के पृष्ठभाग से (पीछे की ओर से) आगे बढ़कर कलश पात्र उठा कर दक्षिण परिक्रमा से पुनः आचार्य के पास आकर कलश-पात्र समर्पण करे फिर आचार्य और अन्य उपस्थित बन्धु खड़े होकर निम्न वेदोक्त स्वस्वि वाचन से अन्तिम क्रिया का सम्पादन कर विवाहोद्वाह क्रिया का समापन करें : यथा— (अभिषेचन करें)

उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! देवयन्तस्त्वेमहि उपयन्तु मारुतः,

सदानव इन्द्र प्रशूनभवा सत्ता, अर्यमा यातु वृषभस्तु विष्मान्यन्ता वसूनि विधत्ते तनूपाः सहस्राक्षो गोत्रमिद वज्रबाहुः, अस्मासु देवो द्रविणं दधातु, य ते अर्यमन बहुवो दैवयानाः पन्थानो राजन् ! दिव आचरन्ति, तेभिर्नो पथिभिः सुगेभि रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ! ॥

बोधश्च मा प्रतिबोधश्च पुरस्ताद् गोपायतामऽस्वप्नश्च मानवद्राणश्च दक्षिण तो गोपायतां, गोपायमानश्च मा रक्षमाणश्च पश्चाद् गोपायतां, जागृविश्च माऽरुन्धती चोत्तराद् गोपायतां, अन्नमिन्नो अधरागऽमिन्नमुदङकृधि, इन्द्रानमिन्नन्न पश्चाद्ऽनमिन्नं पुरस्कृधि, अनमित्रैरहोभिः सचेमहि विश्वेदेवा अन्निमत्रा न उषसः सन्तु निम्रुचा, यः षडूर्वीः पञ्च प्रदिशास्तानः पान्तुमित्र धानी मित्रे दधाता अभयं नोऽअस्तु, ये रात्रीमऽनुतिष्ठथ ये च भूतेषु जागृथ पशून्ये सर्वान् रक्षत जागृतेऽरुन्धतीति, ये देवास्तनूपाः स्थ ते म इह तन्वं पात बोध प्रतिबोधेत्यसौ, वा आदित्यो बोधोऽग्निः, प्रतिबोधो स्वप्नावद्राणेत्यहवैं गोपायमानो रात्री रक्षमाणो जागृव्य रुन्धतीति यज्ञो वै जागृविर्दक्षिणा रुन्धत्येते वै देवा राष्ट्रभृतास्ताने वेष्टं आत्मने गोपीथायन ॥

॥इत्युद कलशम्॥

उपर्युक्त वेदोक्त स्वस्ति वाचन तथा अभिषेचन के पश्चात् आचार्य निम्न अनुष्टुप् छन्द युग्म का उच्चारण करते हुए कलश पात्रस्थ— अक्षोट वा बादाम उपस्थित बन्धुओं में वितरण करें—

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु, पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु, मित्राणामुदयस्त्व ॥१ ॥

मार्कण्डेयमुनेः स्वर्ग, वैद्ययोः स्वर्पते समम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्य मे तत्रितयमस्तुते ॥

जीव त्वं शरदः शतम् ॥२ ॥

विक्रमाब्दे २०५२ ज्यैष्ठ शुक्ल पौर्णमायां भौमवासरे
समाप्तश्चेदं परोपकारार्थमायासम्
'विवाहविधीत्याख्यम्' ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः ! ! !
॥सुशान्तिर्भवतु ॥
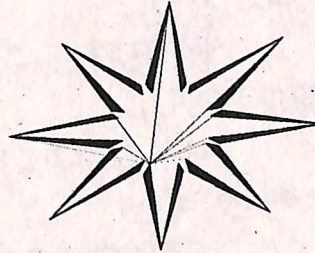
॥आदिदेववन्दनम् ॥

कालातीतं कलातीतं, गुणातीतं गजाननम्।
आदिदेवं महादेवं, देवदेवं वराननम् ॥१ ॥
एकदन्तं दयावन्तं, गौरी पुत्रं सुरेश्वरम्।
वन्देऽहं शैलजा सूनुमादिदेवं गणेश्वरम् ॥२ ॥
मायातीतं दयाशीलं, कृपाशीलं सुखाननम्।
सिद्धिदं जनवृद्धिदं, श्रीकरमऽमलाननम् ॥३ ॥
वक्रतुण्डं महाकायं, कोटि सूर्य प्रभाकरम्।
वन्देहं शैलजा सूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥४ ॥
कोटिसूर्य समाकारं, कोटिचन्द्र सम प्रभम्।
दीनानाथं दयागारं, हरिहराऽज संस्तुतम् ॥५ ॥
धूम्र वर्णं गुणागारं, इष्टदमऽमरेश्वरम्।
वन्देऽहं शैलाज सूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥६ ॥
मूषकस्थं गणाध्यक्षं, भाल चन्द्रं सुरार्चितम्।
आशुतोषं महाप्राज्ञं, देवदानव पूजितम् ॥७ ॥
लम्बोदरं विशालाक्षिं, स्मितास्यमऽजरेश्वरम्।
वन्देऽहं शैलजासूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥८ ॥

गणपतिं गणाधीशं, सन्नुतं शिव सौख्यदम्।
मोक्षदं दुरितापहं, चिद्धनं सुख भोगदम् ॥९ ॥

श्रीधरं कृष्ण पिङ्गाक्षं, आद्यन्तमखिलेश्वरम्।
वन्देऽहं शैलजासूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥१० ॥

आदिवन्द्यं जगद्वन्द्यं, यक्ष गन्धर्वभिर्नुतम्।
प्रपन्नार्तिहरन्दक्षं, भोग स्वर्गापवर्गदम् ॥११ ॥

ज्ञानानन्दं सदानन्दं, ब्रह्मानन्दं विनायकम्।
वन्देऽहं शैल जासूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥१२ ॥

शिवशक्ति प्रियन्देवं, भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्।
धर्मार्थ काम मोक्षदं, ज्ञानविज्ञान दायकम् ॥१३ ॥

सदानन्दकरन्देवं, तेजोदं करुणाकरम्।
वन्देऽहं शैलजासूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥१४ ॥

चिद्घनं मणिमालिनं, कालजाल विनाशकम्।
सेवने भक्ति भावेन, यथेष्ट फलदायकम् ॥१५ ॥

सौम्यरूपं चिदानन्दं, गज वक्त्रं त्रिलोचनम्।
वन्देऽहं शैलजासूनु, मादिदेवं गणेश्वरम् ॥१६ ॥

शोडशैतानि श्लोकानि, गणेशस्य महात्मना।
रचितं शक्तिदासेन, प्राणिनां हितकारकम् ॥१७ ॥

ये पठन्ति सदा मर्त्याः, शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियाः।
लभन्ते परमानन्दं, सत्यं सत्यं न संशयः ॥१८ ॥

॥शिवशक्तिचरण कमलानुरागीः दुर्गा लाल शर्मा राजपुरोहित ॥

* * *

॥अथान्ते इष्टदेव्याराधनम् ॥

॥सर्वश्री अष्टादशभुजाष्टकम् ॥

ओ३म् ऐङ्ग् ह्रीङ्क्लीञ्चामुण्डायै विच्चे ॥१०८ ॥

सिद्धपीठे गिरौ रम्ये, तुङ्ग शैल निवासिनि !
विश्वेश्वरि जगद्धात्रि, महिषासुर घातिनि ॥
बुद्धिदे जनवृद्धिदे, भक्तानुग्रहकारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥१ ॥

त्र्यम्बके करुणाकरे, शोणितासुर मर्दिनि !
आद्य शक्ति महाशक्ति, चण्डमुण्ड विनाशिनि ॥
जटाजूट समायुक्ते, पुत्रदा वर धारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तनामुपकारिणि ॥२ ॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्रसंस्तुते, दैत्यदर्प विमर्दिनि !
सज्जनानां सुशीलानां, भुक्तिमुक्ति प्रदायिनि ॥
क्षीरोदधिसमुद्भुते, भवसागर तारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥३ ॥

महामाया स्वरूपेच, मधुकैटभ मोहिनि !
शिवदूति करालि च, निशुम्भ शुम्भ घातिनि ॥
पुत्रदे बुद्धिदे नित्ये, सच्चिदानन्द कारिणि !

माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥४ ॥

अकारे च इकारे च, उकारैङ्कार रूपिणि !
ह्रीङ्कारि शक्ति रूपेच, क्लीङ्काराम्बर वासिनि ॥

त्रिनेत्रेच त्रिरूपेच, त्रैलोक्यत्राणकारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥५ ॥

सुलोचने रक्ताक्षि च, धूम्रलोचन घातिनि !
अजे च बहुवर्णे च, शताक्षि च शाकम्भरि ॥

जगत्कर्त्रि जगत्भर्त्रि, जगत्संहार कारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥६ ॥

भीमादेवि भ्रामरिच, विन्ध्याचल निवासिनि !
रक्तदन्तिके दुर्गे च, दुष्टम्लेच्छ विनाशिनि ॥

विजये च जयन्त्ये च, परमानन्द कारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि ॥७ ॥

भीमाक्षि भीम रूपे च, दुष्टदानव घातिनि !
मङ्गले च सुशीले च, सदाऽमङ्गल नाशिनि ॥

श्रीस्थलदेवि चामुण्डे, ममानुग्रहकारिणि !
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकरिणि ॥८ ॥

चण्डिकायाष्टकं त्विदं, गृहे किं वा सुरालये
यः पठेत् प्रयतः नित्यं, भक्तिभाव समन्वितः ॥

स श्रीमान्गुणवान्धीमान्, बन्धुदार सुतैर्युतः
भविष्यति निरातङ्को, महामाया प्रसादतः ॥९ ॥

सरसिजनयने ! चन्द्रार्कवदने ! दयाद्र चित्ते ! भगवति जगदम्बे ! अष्टादशभुजे ! प्रसीद दयांकुरु ॥

श्री जगदम्बा चरणकमलानुरागी— दुर्गालाल शर्मा राजपुरोहित मट्टू ।

॥ इत्यलम् ॥

परिशिष्ट

आपन्नकालीन व्यवस्था

"तीन घंटे में विवाह"

वैसे तो विवाह संस्कार के इस पवित्र कृत्य को पूर्ण करने में छः घंटे अपेक्षित हैं किन्तु आपन्नकालीन परिस्थिति में तीन घंटे में उक्त क्रिया को पूर्णतः प्रदान करने के लिए निम्न प्रकरण का स्पर्श अनिवार्य रूप से किया जावे :

(१) ग्रहमण्डलनिर्माणम् ।
(२) ग्रहस्थापनम् ।
(३) स्वस्त्ययनम् ।
(४) आनोभद्रम् ।
(५) कलशार्चनम् ।
(६) द्वारदेवता पूजनम् ।
(७) रक्षोघ्न मन्त्रों में अन्तिम ७ मन्त्र ।
(८) पृच्छोपरान्त देवताओं का आवाहन, पाद्यार्घ्य ।
(९) अभिषेक में आद्यखण्ड के अन्तिम दो मन्त्र ।
(१०) कन्याभिषेक में पृष्ठ ९७ पर के प्रथम दो मन्त्र ।
(११) वर-वधू तिलकं मार्जनम् ।
(१२) पाणिग्रहणं पृष्ठ संख्या १०६ तः १२१ ।
(१३) अग्नि कर्म— १३० तः १३१/१३३ तः १३४/१३६ तः १३७/ का स्वाहाकार
(१४) लाजा होम ।
(१५) सप्तपदी ।
(१६) दायभक्त क्रिया ।
(१७) मंगल पुष्पाणि प्रथम १० श्लोक ।
(१८) उदकलशम् ।

— लेखक